शतदल

श्री सुदर्शन सिंह चक्र

(लेखक की मूल लेखनी मे मुद्रित)

हनुमद्धाम - शुकतीर्थ

शतदल

अधर बिम्ब विडम्बित खेद्रुस

मधुर वेणु [illegible] निवेदितम

कमल कोमल कर

मयि गोप किशोर मुपास्महे

" अंसालंबित वामकुंडलधरं मंदोन्नत भ्रूलतं -
किंचित्कुंचितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारेक्षणम् ।
आलोलांगुलि पल्लवैर्मुरलिकामापूरयंतं मुदा -
मूले कल्पतरोस्त्रिभंगिललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ॥ "

"समर्पण"

लो यह अपना मेरे मोहन!

बैठ हृदय में जिसे बनाया- दिया जिसे तुमने यह जीवन

मैं निर्धन यह आशा मनमें—

रहा लिये, कुछ श्री चरणों में—

दूं, पर क्या दूं ?— इसी सोच में—

जलता था, क्या पाता ? प्यारे! सदय हुये मेरे जीवन-धन!।

दिया इसे- यह जैसा भी है,

देन तुम्हारी- तेरा ही है।

मेरा तो सर्वस्व यही है,

तो फिर और कहाँ से लाऊं ?— तुम्हीं कहो- मैं ओ मधुसूदन!।।

अर्पित वही आज यह- चंचल।

श्री चरणों पर, 'अब न मुझे छलना'

ले लो अश्रु सिक्त यह "शतदल,"

सफल बना जीवन की आशा- माधव !—

तेरा यंत्र

— 'सुदर्शन'

भूमिका ~

"मूढ: कवि यश: प्रार्थी," या "कवि न होऊँ नहिं चतुर कहाऊँ" ये वाक्य महाकवि कालिदास और पूज्यपाद गोस्वामी जी की तो नम्रता और उदारता के ही सूचक हैं। इनकी वास्तविकता, तो मेरे जैसे यश के लोभी कोट में ही होती है।

देखिये तो मेरी धृष्टता- जिसने आजतक कोई अलंकार या रीति ग्रन्थ नहीं देखा, महाकवि तो क्या किसी छोटे से छोटे तुक्कड़ का भी दो दिन भी साथ न हुआ, वही [illegible] का लड़का केवल हिन्दी मिडिल पास करके चला है आज गीत लिखने! सो भी ऐसे गीत लिखने जैसे उसने तो कभी कहीं देखे नहीं !!

"यह धृष्टता करने का साहस ही कैसे हुआ ?"

बात यह थी- मैं श्री शान्तनु बिहारी द्विवेदी के साथ गर्मी के दिनों में सन् १९३४ ई॰ में हरद्वार गया। कनखल में ठहरा था। वहां त्यागी सन्यासी पूज्यपाद स्वामी शंकरानन्द जी के यहां हम दोनों प्रायः नित्य जाते थे। वे एक उजड़ अहाते में जो जंगल ही है, एक पुरानी कुटी में रहते हैं। संग्रह रखते नहीं। मधुकरी मांग कर खाते हैं। हमने ऐसा अभिमान शून्य, सरल, त्यागी, हँसमुख, और तेजस्वी

महात्मा अब तक नहीं देखा। वेदान्त में आपकी दृढ़ निष्ठा है। और बुद्धि इतनी तीव्र है कि जिस पाश्चात्य दर्शन के आपने दर्शन भी नहीं किये उनके सिद्धान्तों को सुनते ही उनपर ऐसा मार्मिक विचार देते कि हम आश्चर्य में पड़ जाते।

हम पर उनकी असीम कृपा थी। हम वहां जाते उनके उपदेश सुनते, अपनी बातें कहते। कभी किसी बात पर खूब तर्क भी करते वे इससे प्रसन्न ही होते। प्रायः बात बात में वे मुझसे कहा करते 'तुम कुछ लिखो'। कभी कभी शान्तनु बिहारी जी से कहते "इसे कागज कलम और स्याही देकर एक कमरे में बन्द करदो। बैठे बैठे ऊब जायगा तो आप ही लिखेगा।"

मैं सुन लेता। सोचता क्या लिखूं? कैसे लिखूं?

घर लौटा। लगभग चार महीने लौटे हुये थे, काशी विद्यापीठ में बैठा था, बड़ी गर्मी के दिन थे, हँसी कर रहा था साथियों से। हँसी में ही "आंसू" नाम का गीत लिख डाला। बस उसी 'आंसू' से इस 'शतदल' का जन्म हुआ।

एक दिन बाद शान्तनु बिहारी जी ने इसे देखा। उन्हें वह बहुत पसन्द आया। मेरा उत्साह बढ़ गया। हम दूसरे दिन ही फिर हरद्वार को रवाना हुये। वहां दो तीन गीतें लिखी गईं। प्रायः एक महीने वहां रहकर हम फिर लौट आये। स्वामी जी के दर्शन-

जो तो हम इस बार भी वैसे ही नित्य जाते। वहां २ घंटे आनन्द से बिताते। वे भी पूर्ववत् हो मुझसे कुछ लिखने का आग्रह करते रहे। पर मैंने इसे दिखाया नहीं, न कहा ही कि लिखूंगा। पर मन में इच्छा तो ले ही गया। घर आकर फिर लिखने लगा २५ गीतें लिखी गईं। कुल सप्ताह जाता रहा। भाव सो नहीं, लिखना बन्द कर दिया।

क्वार का महीना था, शान्तनु जी बीमार थे, उन्हें लेकर देहात से काशी दवा कराने आया। दवा तो न हुई पर जलवायु बदलने के लिये हम दोनों निकल पड़े। इलाहाबाद पहुंचे। झूसी में पूज्यपाद श्री १०८ श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी भूतपूर्व सम्पादक 'निगमागम चन्द्रिका' तथा 'चैतन्य चरितावली' आदि ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक महापुरुष का अखंड नाम जप कीर्तन चल रहा था। हमें पता तो न था पर 'कल्याण' के द्वारा हम श्री ब्रह्मचारी जी से परिचित थे। ढूंढते ढूंढते आप के आश्रम पर पहुंचे और वहां तीन चार दिन रहकर सत्संग से लाभ उठाने की प्रार्थना की। पर आप की दया की क्या सीमा- आपने कहा 'छ महीने रहो।' दूसरे ही दिन दूसरे छ महीने के लिये इस महा यज्ञ के साधकों को दीक्षा होने वाली थी। हम दीक्षित होगये।

पन्द्रह बीस दिन हुये थे, मैं बीमार था। ब्रह्मचारी जी की शान्तनु बिहारी जी पर अत्यन्त कृपा थी, यों तो आप मूर्तिमान कृपा ही हैं। आपने उससे आगामी 'श्रेय' के निकलने वाले 'श्री भागवतांक' के लिये

लेख लिखने को कहा। इसी सिलसिले में शान्तनु विहारी जी ने मेरी 'गर्वित चित्रकार' गीत ब्रह्मचारी जी को दिखाया। ब्रह्मचारी जी ने इसकी केवल प्रशंसा ही नहीं की, उन्होंने सब गीतें मांगीं। वे पेन्सल से लिखी थीं, मैं लिखने में असमर्थ था, पर शान्तनु विहारी जी ने तथा मैं जिनका बड़ा ही आभारी हूं यहीं के साधक श्री अनिरुद्ध जी और श्री पुरुषोत्तम जी ने ११ गीतें लिख कर ब्रह्मचारी जी को दिया। उन्होंने उनको 'संकीर्तन, भक्ति, 'श्रेय, स्वधर्म, और 'अभ्युदय में छपने को भेज दिया। 'भक्ति, और श्रेय, ने छापा ~~को नहीं तो पता नहीं पर शेष ने तो छापा यह मुझे याद है।~~

पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी उन्हें पत्रों में न भेजते तो मैं कभी भेजने का साहस करता - सो नहीं जानता। पर उसके बाद तो स्वयं ही भेजता रहा। इतना ही नहीं - इस से मेरा उत्साह दुगुने वेग से जग पड़ा। लालसा बढ़ गई और वहीं इसे लिख डाला। ७५ गीतें वहीं साधन करते करते लिखी गई हैं।

पूज्यपाद स्वामी शंकरानन्द जी वेदान्त-प्रेमी हैं। सम्भवत: वे वेदान्त विषयक लेख देख कर बहुत प्रसन्न होते। पर करूं क्या! मेरी इतनी योग्यता कहां? और उन निष्काम महात्मा के लिये इन लेखादि से क्या सम्बन्ध। वे तो मुझे उत्साहित मात्र करते थे। पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी तो असीम दयालु हैं। आप का परिचय क्या

हूँ ? आप स्वयं प्रसिद्ध महात्मा हैं। मेरे ऊपर आपने जो कृपा की है, वह कहने की वस्तु नहीं, मैं आपका ऋणी हूँ। इस जीवन में तो क्या सैकड़ों जन्मों में भी आपका ऋण नहीं चुकाया जा सकता। अतः हृदय से इन दोनों महापुरुषों के चरणों में शत शत प्रणाम।

श्री शान्तनु विहारी जी द्विवेदी तो मेरे शरणदाता हैं, पालक हैं, मित्र हैं, सबकुछ हैं। उन्हें क्या लिखूं ? मुझ घर द्वार हीन अशरण अनाथ को उन्होंने ~~इधर २ वर्ष से~~ अपने घर अपने सगे भाई से भी बढ़कर प्रेम से रखा है। अपने साथ भ्रमण कराया है। मेरी हठ ~~मेरे दुःख~~ को रखा है, मेरी भूलों को बिना ध्यान दिये सहा है। जब लिखता हूँ 'घर', तो उन्हीं के घर से अर्थ होता है। मेरे न घर है, न धन। न कुटुम्ब है, न स्थान। मेरा घर उनका ही घर है। मेरा कुटुम्ब उनका ही कुटुम्ब है। ~~अबतक तो ऐसा ही रहा आगे की भगवान जाने।~~ अतः उनका स्मरण कर लेना ही पर्याप्त है।

श्री पुरुषोत्तमदास जी सिंघानियां (बंबई) जो यहीं सारनाथ में साथ हैं कागज, कापी, कलम, स्याही तथा और भी अनेक प्रकार से सहायता देते रहे हैं। उनकी सहायता से ही इसे लिख सका हूँ। नहीं तो मेरे पास तो कौड़ी न थी, न रही। यहां शान्तनु विहारी जी के पास भी थोड़े रुपये थे, उनसे मांगने को जी न चाहता था, लिख कैसे पाता। कागज स्याही कहाँ पाता ? तथा और भी

कई सज्जनों ने अपना ~~[illegible]~~ अमूल्य समय देकर मुझे सहायता दी है। श्री गंगा प्रसादजी (मैनेजर 'गीताप्रेस'), श्री दिनेश्वर प्रसादजी (विद्यार्थी काशी कुमार विद्यालय-विद्यापीठ) तथा और भी कई महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। अपने को उन्हें धन्यवाद देने का पात्र तो नहीं समझता। पर सबका आभारी हूँ।

महाशिवरात्रि
सं:- १८-८-२

विनीत:—
'लेखक'

निवेदन ~

'शतदल', किसी सुन्दर सरिता के एकान्त शान्त तट पर उसकी कलकल नादिनी को सुनते हुये या किसी गिरि की सुन्दर शिला पर बैठकर या किसी उपवन के सघन हरे भरे कुंजों में लताओं की लहराहट, चिड़ियों की चहचहाहट और कलियों की मुसकाहट के बीच में नहीं लिखा गया है।

ठीक एक दीवार का अन्तर है, संकीर्तन-भवन में साधक ढोल, मृदंग, झांझ बजा बजाकर उच्च स्वर से "हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥" की पावन ध्वनि कर रहे हैं। सारा मकान, सारा वायुमंडल उस ध्वनि से गूंज रहा है, और उसी के बीच इस कमरे में बैठा मैं ये गीतें लिख रहा हूं।

'शतदल' की तीन चौथाई गीतें इसी प्रकार लिखी गई हैं। इससे उनमें कोमलता, सुन्दरता न आवे तो क्या आश्चर्य, पर मुझे विश्वास है कि उसमें उस पावन ध्वनि की छाप अवश्य है। उसमें तड़प है, रुदन है, चाहे वह कोमलता लिये हुये भले हो न हो।

'शतदल, की गीतें गीतें हैं या नहीं, वे कवितायें हैं या तुकबन्दियाँ या और भी कुछ, सो मैं नहीं जानता। मानूं भी कैसे साहित्य तो पढ़ा नहीं। वे जो भी हैं जैसी भी हैं आपके सामने हैं। हृदय की तड़प, अपनी बात जैसे मन में आया वैसे शब्दों के जाल में बाँध दिया। अब आप उसे कविता कहें या तुकबन्दी या उभयभ्रष्ट।

'शतदल, में आप को दोष ही दोष मिलेंगे। मैं अल्पज्ञ जो ठहरा। इसमें एक ही भाव, एक ही बात यहां नहीं एक ही शब्द बार बार मिलेंगे। पुनरुक्ति मिले तो क्या आश्चर्य? आज तक यही नियम रहा है – रोने वाले एक ही बात बार बार कहते हैं। दुखित को दूसरी बात ही नहीं सूझती। मेरी तो क्या 'सूर, 'तुलसी, 'कबीर, जैसे महाकवियों की विनय देखकर यही कहना पड़ता है। स्वाभाविक ही है जो दुखी है वह कल्पना, भावना क्या जाने, उसके पास तो एक ही बात है अपना दुख रोना, दुहराना।

सो भी यह तो शतदल, ठहरा। इसमें एक ही रस, एक ही गंध होनी ही चाहिये। इसकी सारी पंखुड़िया, इसके सारे दल एक ही बनावट के, एक ही आकार के, एक ही रंग के, एक ही सुगन्धि से सुवासित, और एक ही रस से पूरित हैं। चाहे उन में तनिक छोटे बड़े कोई भले ही हों। चाहे सूर्य की धूप, वायु और समय के

प्रभाव से उनके रंग-रूप और आकार में तनिक सा अन्तर भले ही प्रतीत होता हो।

इसे आंसू से सींच कर जीवनधन के श्री-चरणों में चढ़ाया है। यह वहाँ कुम्हलाये नहीं, वहां सदा प्रफुल्लित रहे यही इस दीन की लालसा है। फिर चाहे लोग उसे और मुझे चाहे जो भी कहते रहें, कोई चिन्ता नहीं।

पर इस 'शतदल' का जन्म 'आंसू' से ही हुआ है, आंसू में ही यह जगा है, आंसू से ही सींच कर प्रियतम के पाद पद्मों में चढ़ा है। यह हरा भरा और प्रफुल्लित भी तभी रहेगा जब इसे बराबर आंसू से सींचा करें।

त्रिभुवन सुन्दर कन्हैया के चरणों पर पड़े इस 'शतदल' पर मेरे लिये यदि आप दो बूँद भी अश्रु देंगे तो यह कंगाल धन्य हो जायगा, कृतार्थ हो जायगा। मेरे लिये न सही, 'शतदल' के लिये न सही, प्यारे माखन के चरण-कमलों पर देना है यही समझ कर यदि आप दो विन्दु जल अपने नयनों से मुझ भिक्षुक को दान कर देंगे तो यह अपने को धन्य समझेगा। क्या इतना करेंगे? है इतनी क्षमता?? है इतनी उदारता???

प्रार्थी!—

सुदर्शन सिंह

॥ ॐ ॥

॥ श्री हरिः ॥

शतदल

(१)

॥ स्तुति ॥

आर्त विनाशन भव-भय नाशन ।

जय जय जय श्री कंस-निसूदन; जय मधु-सूदन जय गरुड़ासन ॥

दीन-बन्धु करुणा-निधि जय जय,

अशरण-शरण अनाथ-नाथ जय,

पतित-त्राण-कर्ता भर्ता जय,

जय जय गिरिधर,

जय गजेन्द्र-पांचाली-रक्षक; जय वंशीधर त्रिभुवन मोहन ॥१॥

विदुर-शाक-भोजी की जय जय,

तन्दुल के लोभी की जय जय,

माखन-चोर कन्हैया की जय,

जय नटनागर,

जय शबरी के बेर-भोक्ता; जय प्रेमी के प्रिय जीवन-धन ॥२॥

चक्र-पाणि श्री केशव की जय,

शक्र-ब्रह्म-शिव वंदित की जय,

दुष्ट विनाशन गरुड़ध्वज जय,

जय जन रक्षक,

जय केशी-अघ-बक के नाशक, जय मुरारि, जय कालिय मर्दन ॥ ३ ॥

यशुदा नन्दन नन्द लला जय,
गौ-चारक गोपाल कुँवर जय,
गोपवेश धर श्री माधव जय,
जय सुख सिन्धो,
मुरली-धर वृन्दावन-चारी; जय दामोदर प्यारे मोहन ॥ ४ ॥

इस चातक के जीवन घन जय,
पाहि पाहि प्राणेश्वर जय जय,
निष्कलंक शुभ पूर्ण चन्द्र जय,
जय दुख हारी
जय प्रिय, चरण-धूलि दे आ अब; जय करुणामय जय अघ नाशन ॥ ५ ॥

(२)

" आँसू "

हँसो मत यह है हृदय हमारा।
आँसू बन जो निकल रहा है इन आँखों के द्वारा॥
अरे विश्व सौन्दर्य निहित है इस करुणा के कण में,
सदय हृदय जन लख पाते हैं महाशक्ति इस जल में।
दीनों का एक सहारा॥१॥

तेजोमय रवि से कम सुन्दर निश्चित है रत्नों [illegible] जहाँ
महा महिम ~~[illegible]~~ जलनिधि से बढ़कर छुद्र कूप उपयुक्त कहाँ
देव मूर्ति आदर पाती है नीत उतंग हिम गिरि से,
यों ही मेरा जलधारा॥२॥

ऊषा के मंजुल प्रभात में उज्वल आभा लेकर,
श्यामल दुर्वा के पत्तों पर या पाटल[1] के दल पर
मुक्ता सा वह ओस बिन्दु, पर क्या इसको पायेगा?
है यह प्यारे का प्यारा॥३॥

जिसके भृकुटि भंग से होता हा हाकार जगत में,
सृष्टि प्रलय का खेल खेलता रहता जो प्रति-पल में।
जिसके भय से निखिल प्रकृति नियमित गति में रहती है,
है वह भी इससे हारा॥४॥

[1] गुलाब का फूल

जीवन-सरिता के प्रवाह में विघ्नों से व्याकुल होकर,
हो जाते हैं हत उद्यम सब जब अपनी आशा खोकर।
तब इसका आश्रय लेकर के महाशान्ति सब जन,
पा जाते विमल किनारा ॥ ५॥

(२)

॥ हिलोर ॥

आती फिर वह मधुर हिलोर।
प्रिय के पद-पराग से पावन कल कल करती मेरी ओर॥

शिशु के मृदुल हास्य सी सुन्दर,
मुकुलित कुंदकली सी उज्वल।
नूतन धेनु-वत्स सी चंचल,
चूमे क्षितिज[2] का छोर॥१

रवि की प्रथम किरण जब आकर,
छू देती नलिनी[3] दल जाकर।
हँस उठती मधुसूदन पाकर,
देती रस में बोर॥२॥

चन्द्रकान्त अमृत वर्षाता,
जब मधुमय शशि के कर पाता।
यों ही द्रवित हृदय हो जाता,
हो आनन्द विभोर॥३॥

करती निखिल जगत को पावन,
मलयानिल सी सुखद सुहावन।
लहराती मानो मन भावन,
कृपा-दृष्टि की कोर॥४॥

[2] आकाश [3] कमल

मेरे अश्रु-बिन्दु से धोकर,
जीवन-धन के चरण मनोहर।
आती इसी ओर को मुड़कर,
हँसता वह चितचोर ॥५॥

(४)

" मुकुलित-कलिका ॥

मुकुलित-कलिका की मुसकान ।
हृदय-पटल पर अंकित करती जीवन का अवसान ॥
निशि में शशि किरणों का चुम्बन
ऊषा में दल पर मुक्ता-कण,
रह कर कुछ क्षण,
और ढुलक पड़ता जो उसका था श्रृंगार महान ॥१॥
पवन का बार बार सहलाना,
भ्रमर का मधु पी पी कर गाना,
नहीं कुछ माना,
जग को करती रही निरन्तर निज सौरभ का दान ॥२॥
पर जब सब पंखुड़ियां झड़कर,
गिरीं भूमि पर जीवन खोकर,
तब क्या आकर,
कोई एक आह भी करता लख उसका मुख म्लान ॥३॥
लेकिन कहीं सुभग या अवसर,
कहीं किसी के कर से चुनकर,
प्रभु चरणों पर,

चढ़ पाती तो पा जाती है सुर दुर्लभ सम्मान ॥३॥
यों ही मानव जीवन पाकर,
इस नश्वर जगती में आकर,
सब कुछ खोकर,

दुख-मय-सुख-पा कर जाते हैं शून्य हृदय प्रस्थान ॥४॥
पर यदि सब कुछ अर्पण करके,
पा जाते हैं उस प्रियवर से,
* जीवन-धन के
चरणकमल तो हो जाता कल्याण ॥५॥

(५)

॥ गर्वित-चित्रकार ॥

बैठा था तब चित्र बनाने ।
नित नूतन सौन्दर्य-सुधा को कुछ चित्रों में लाने ॥
शरद निशा का निर्मल भूप,
कितना सुन्दर और अनूप।
ऊषा वा सन्ध्या में करता नभ पर किरण-प्रकाश,
घन-अवली पर कितना मंजुल रवि-किरणों का हास,
पर उस सुषमा की एक बिन्दु,
भी नहीं; अरे पर इन्हें किन्तु
अंकित करने की शक्ति नहीं; तब क्यों उस पर हठ ठाने ॥
बैठा था तब चित्र बनाने ॥१॥

बैठा था तब चित्र बनाने ।
जो चाहूँ अंकित कर दूंगा ऐसा मन में माने ॥
पर क्या जुगनू की द्युति-प्यारी;
कला पूर्ण वा शिशु किलकारी ।
कल कल करते घोर मचलते जननी अंचल छोर,
पुत्र स्नेह सुधा से सिंचित मातृ हृदय की ओर ।
बढ़ा भला पाता निज गति को,
नहीं अगर, तो उस चिर शिशु को,

अंकित करना शक्य ? लगी तू आहो उसे भुलाने ॥
बैठा था तब चित्र बनाने ॥२॥

बैठा था तब चित्र बनाने
भ्रमित बुद्धि, अति आतुर लेखनी पकड़ अहो अनजाने ॥
किन्तु रूप का सिन्धु लखा जब,
सुधि तन मन की भी भूला तब।
कहाँ लेखनी रंग कहां, सब व्यर्थ हुये उपचार,
उद्वेलित हो उठा प्रेम का पारावार अपार।
रोमांचित तन, श्रवत अश्रु जल,
गद्गद् कंठ लुठत अवनी तल।
दौड़ पड़ा विह्वल पागल सा चरण-कमल-रज पाने ॥
बैठा था तब चित्र बनाने ॥३

बैठा था तब चित्र बनाने।
जाने कितनी मृदुल भावना आशा मन में आने ॥
किन्तु विफल भी हो सब की सब,
हुई सफल आशा उसकी अब।
अनजाने निष्फल उद्यम में जग-जीवन-धन पाया,
आशा विफल सफल हों चाहे जन्म सफल कर पाया।
छू मस्तक से पद कृपालु के,

मेट दुरखेद ([illegible]) विधि अंक मालके।
हुआ परम पावन सुर नर मुनि लगे सुयश-गण-गाने॥
बैठा था तव चित्र बनाने ॥४॥

(६)

॥ पथिक से ॥

आते हो उस पथ से भैया?
जिस पथ में लीला करते हैं शंकर-विधि-सुर सैंया।
क्या देखी हैं तुमने दृग से,
उत्फुल्लित ललित लता वल्लरियां?
नित नूतन सौन्दर्य युक्त उपहार लिये मृदु कलियां।
देखी हैं अंकुरित भूमि-तृण कोमल प्रिय पद रंजित?
तथा ग्रास मुंह में ले भूलीं खाना भी जो गैयां? ॥१॥
दुग्ध-धार स्तन से बर्षातीं
मुंह ऊपर कर खड़ी रंभातीं
दुग्ध लिये मुँह में बछड़ों की मूर्ति सुहावन भाती
चंचलता भूले चित्रित से खड़े वहां चुपचाप
हां देखा है भला बताओ उनका चतुर चरैया?॥ २॥
देखा है कालिन्दी जल को?
छोड़ प्रवाह सका लख उसको
तथा अम्बु सह तरु बर्षाते जो अपने फल को पुष्पों को
कलरव हीन शान्त मुनि गण से बैठे विहंग शाखा पर चित्र सा।
देखा है नयनों से तुमने उनका कुवँर कन्हैया!॥ ३॥

जिसकी पद-रज पा जाना ही
धन्य भाग्य है सुरराज का भी
तनिक छाछ पर गोपी जिसको नचा रहीं हैं मुग्ध बनी ही
पर न जिसे पाते मुनि जन हैं ध्यान धारणा तप जप से भी
देखा है क्या वही दृगों से मेरी नाव खेवैया ? ॥४॥

नहीं पथिक मैं भूल रहा हूं,
झूठी आशा से वंचित हूं
जाओ तुम अपने पथ जाओ वहां न पहुंचे जान रहा हूं
यदि तुम वहां पहुंच पाते तो भला इधर से आते ही
कौन भला लौटेगा भाई उस पथ का चलवैया ॥५॥

(७)

॥ गर्वितों से ॥

ठहरो यों न मुझे ठुकराओ।
दीन निराश्रय निर्बल लख कर यों मत आंख दिखाओ ॥
भूल रहे हो मैं अनाथ हूं
आश्रय हीन मलीन गात हूं
नीच तुच्छ हूं, पतित त्याज्य
जैसा हूं वैसा ही तुमसे फिर कहता हूं
अपनी भूल मिटाओ ॥१॥
सुना नहीं वे दीनबन्धु हैं ?
निर्बल के बल कृपा-सिन्धु हैं
पतित-पाप-दाहक सुनाथ हैं
परम अकिंचन तुच्छों के ही; जगन्नाथ हैं
अत: न त्याज्य बनाओ ॥२॥
मेरे वे धन हैं बल जन हैं
भाई हैं स्वामी तन मन हैं
आश्रयदाता हैं जीवन हैं
जो कुछ हैं वे ही प्रिय जन हैं
उन्हें भूल मत जाओ ॥३॥

तंग करोगे यदि तुम मुझको,
दया न आयेगी यदि तुमको
मैं भी हूं मनुष्य इस मनको
कब तक रोकूं आखिर हार दया मय उसको
चित्त लगा आओ ॥४॥

अश्रु बहाते जब मैं रोकर
आर्त दीन अति आतुर होकर
उसे पुकारूं तब वह आकर
ले लेगा अपनी गोदी में अश्रु पोंछकर
कह देगा सुख पाओ ॥५॥

पछताओगे तब अपने को.
दोष न फिर कुछ देना हमको
परम अकिंचन ही प्रिय उसको
ज्ञानप्राप्त हो अब भी सत्वर भाई तुमको
मन प्रिय तम में लाओ ॥६॥

(८)

॥ कौन ? ॥

कौन है इस सुषमा का सार ?
है चंचल सब जड़-चेतन जग किसके लिये अपार ?॥
रजनी के इस तमस्तोम में,
किसका मंजुल मधुर प्रकाश ?
व्याप रहा प्रत्येक कणों में,
किस चिर शिशु का विभव विलास ?
कौन इस लीला का आधार ?॥ १ ॥
किसका कोमल मधुर स्पर्श पा,
हो उठता है विश्व विभोर ?
किस सुख की सुन्दर आशा से,
जाते सब अनन्त की ओर ?
किसे देने को अपना प्यार ? ॥ २ ॥
सुप्त जगत के हृदय-पटल पर,
बनकर चित्रकार यह कौन,
खींच रहा सब स्वप्न चित्र है ?
अखिल प्रकृति है कैसी मौन,
कौन है इसका नाटककार ? ॥ ३ ॥

यह हँसना फिर रोना कैसा?

यह दुख यह कठोर व्यवहार,

यह सौन्दर्य प्रमोद प्रेम यह

इतना विषम द्वन्द्व-संसार,

कौन है इसका रचनाकार!॥४॥

यह भ्रम, मोह, क्षणिक तृष्णामय

क्यों सबने अपनाया?

अरे कहा क्या! इन्द्र जाल यह,

सारा जिसकी माया,

वही तो नटखट नन्दकुमार ॥५॥

(८)

॥ मेरी कुटी में ॥

एक बार प्यारे आजाओ।
भूले भटके कभी यहां भी चरण-धूलि दे जाओ॥
जीर्ण शीर्ण कुटिया में मेरी,
हो मोहन मुरली ध्वनि तेरी।
शत शत छिद्रों युक्त झोंपड़ी माधव! गुंजित करदे,
हां इसके छत के छिद्रों से सारा नभ तल भरदे।
दीपक नहीं जला है इसमें,
अन्धकार तस्कर है इसमें।
परम प्रकाशक इसे सदा को स्वयं भरा तुम जाओ॥
एक बार प्यारे आजाओ॥१॥

एक बार प्यारे आजाओ।
मेरी नाम मात्र की कुटिया अरे तनिक लख जाओ॥
छत सारी की सारी चूती,
दीवारों से वायु न रुकती।
कूड़े कर्कट, कीट पतंगों का हां निश्चय यह आश्रय है,
हैं ये सेवक, रवि-शशि किरणों का भी यह दायक है।
बाहर कहीं न जाता हूं मैं,

स्नान, वायु सुखद यहीं मिलेगा।
धूप, चन्द्र-किरणों का सेवन इस में ही कर जाओ॥
एकबार प्यारे आजाओ॥२॥

एक बार प्यारे आजाओ।
त्रिभुवन-पति ! फिर भी ऐसी कुटी कहां तुम पाओ॥
सुनो हंसो मत ओ करुणामय!
करता कब से कुसुमों का चय।
बिछा रहा तब मार्ग जान कर चुन चुन फेंके शूल,
किन्तु भाग्य में मेरे तो हैं शूल; कहां वे फूल॥
बहुत प्रतीक्षा किया थका अब,
शिथिल पड़े तन मन इन्द्रिय सब।
देर न करो प्यास से मरता श्याम-सरस्वत! आओ॥
एक बार प्यारे आजाओ॥३॥

एकबार प्यारे आजाओ।
मधु-वर्षा कर भरदो इसको, प्रियतम! सफल बनाओ।
तुच्छ न देखो, मलिन न देखो,
अपना विरद, विमल यश देखो।
अन्धकार, कूड़े कर्कट की दूर हटेगी ढेरी,
इन छिद्रों से प्रिय! गूंजेगी मधुर मुरलि-ध्वनि तेरी।

20

दीन-कुटी को सफल बनाओ,
अपनी मोहन मूर्ति दिखाओ।
बहुत महल में रहे आज कुटिया में आओ, गाओ॥
एक बार प्यारे आजाओ॥४॥

(१०)

॥ मेरा पथ ॥

सच है कण्टक मय पथ मेरा।
बिना कष्ट झेले कब पाया किसने दर्शन तेरा॥
वात, शीत, वर्षा, आतप सह
वन पर्वत खोहों में रह रह
जाने कि[illegible] कष्ट उठाकर
फिर भी तो वे
पाते नहीं तुझे योगी [illegible] किये यत्न बहुतेरा ॥१॥
यज्ञ दान व्रत संयम नाना
धर्माचरण जहां तक जाना
किये सभी अब तक लाखों ने
व्यर्थ हुये सब
नहीं कभी तव मूर्ति मनोहर भर आंखों उन हेरा ॥२॥
हां उससे तुझसे है नाता
जो सब दे तुझको अपनाता
किन्तु प्रेम का वह पथ भी तो
सरल नहीं है
प्राण हथेली धरे पथिक हो, तब दर्शन हो तेरा ॥३॥

तो आने दो प्रलय घन को
झंझानिल को वज्रपात को
व्याघ्र सिंह मय दुस्तर वन को
भ्रमर पूर्णनद
रोक न पावेंगे इस ॰॰ को करें यत्न बहु तेरा ॥४॥
छिन्न भिन्न यह तन होजावे,
मांस बोटियों में बँट जावे,
विघ्नों को पर कुचल चरण से
चाहे जैसे
ः समाने मूर्ति तुम्हारी देखे बिन मन मेरा ॥५॥
और न इनसे मुझे डराओ
प्यारे इतनी दया दिखाओ
चाहे जो जितनी बाधा हों
सब स्वीकृत हैं
पर पाऊं पावन पद-रज मैं पाऊं दर्शन तेरा ॥६॥

(११)

॥ चातक ॥

ओ मेरे प्यारे घनश्याम।
आ आ अरे पुकार रहा हूं आनन शोभाधाम! ॥
कौन बताता तू निष्ठुर है,
मेरा तो तू ही जीवन है।
देख! शुष्क होगया कंठ है प्यारे जल बिन तेरे,
तेरे बिना सहारा है क्या इन प्राणों को मेरे।
कितने दिन से प्यासा हूं मैं,
राह तुम्हारी देख रहा मैं।
एक बिन्दु बस एक बिन्दु जल से ही मेरा काम॥
ओ मेरे प्यारे घनश्याम।॥१॥

ओ मेरे प्यारे घनश्याम!
तेरे बिना और जल मेरे आयेंगे क्या काम॥
हां सर सरिता सागर सब हैं,
हैं वे जिनको उनको ही हैं।
मुझे भला उनसे क्या मतलब मेरे तो तुम प्राण,
मर जाऊंगा यदि न मनाओ यह चातक का मान।
और जीव मैं नहीं कहीं भी,

पी लूंगा जल जो कोई भी।
यदि जीवन रखना हो आओ मेरे ललित ललाम॥
ओ मेरे प्यारे घनश्याम! ॥२॥

ओ मेरे प्यारे घनश्याम!
मैं तो हूं बस एक तुम्हारा मेरे प्राणाराम! ॥
बर्षाओ पत्थर बर्षाओ,
अंग भंग कर मुझे मिटाओ।
चाहे जो भी करो किन्तु तुम एक बार आजाओ,
एक बिन्दु जल इस प्यासे को मरते समय पिलाओ।
तुम जैसे हो पर मेरे हो,
सब प्यारे तेरे अर्पित हैं।
वज्रवृष्टि या स्वाती का जल मेरे जीवन धाम॥
ओ मेरे प्यारे घनश्याम! ॥३॥

ओ मेरे प्यारे घनश्याम!
चाहे जो करना हो करना, आओ मन अभिराम॥
एक बार तो दर्शन कर लूं,
एक बिन्दु जल तेरा पीलूं।
चिन्ता नहीं मृत्यु हो अथवा रहे हमारा जीवन,
सुखी रहो तुम हर्षित होवे चाहे यह मेरा मन।

हां देदो इतना ही देदो,
और न चाहन तुम जीवन दो।
दे दो अपनी बाँकी झाँकी जल जग-जीवन-श्याम ॥
ओ मेरे प्यारे घनश्याम! ॥४॥

(१२)

॥ कुसुम ॥

तेरा ही हूं प्राण हमारे !
तुझसे हुआ रहूंगा तेरा सदा सर्वदा प्यारे ॥
तुमने अहो दिया यह जीवन,
तुमसे सुरभित पाया यह तन ।
तेरी दया दान की वह मधु जिससे अलिगण मत्त बने हैं,
गाते मुझे रिझाते हैं सब पक्षी गण कल रव करते हैं ।
सुन्दर मलय पवन का सेवन,
शशि-किरणों का मधुमय चुम्बन ।
तेरी कृपा कोर से ही हैं पाये ये सुख सारे ॥
तेरा ही हूं प्राण हमारे ! ॥१॥

तेरा ही हूं प्राण हमारे !
तेरे सिवा खोज आया हूं यद्यपि बहुत सहारे ॥
किन्तु न कोई ने अपनाया,
रख कुछ क्षण सब ने ठुकराया ।
देवों के मस्तक नृप-सिर पर सुन्दरीयों के उर पर,
सभी कहीं तो घूम चुका तुझसा न कहीं सुख सुन्दर ।
जहां रहा तेरा कहलाकर,

पतित कीच में हूं यदि आकर।
तो भी तो मैं तेरा, है यह दशा दैव के मारे ॥
तेरा ही हूं प्राण हमारे! ॥ २ ॥

तेरा ही हूं प्राण हमारे!
वे क्या मुझको अपनावेंगे स्वार्थ-दग्ध बेचारे ॥
जब तक थी सुगन्धि सुन्दरता,
तब तक ही था उनसे नाता।
म्लान शुष्क लख कुचल दिये हैं फेंक दिये कीचड़ में,
नव पच नहीं हुईं पंखड़ियां थे वे मोहित जिन में।
पर तुमने तो जन्म दिया है,
पाला है फिर बड़ा किया है।
मैं अभिमानी तुम्हें भूल दुख सहता हूं मन मारे ॥
तेरा ही हूं प्राण हमारे! ॥ ३ ॥

तेरा ही हूं प्राण हमारे!
कहो, दीन यह अब फिर किसको होकर आर्त पुकारे ॥
जब तक रहा तुम्हारा होकर,
रहा जहां तेरा गुण गाकर।
अब जैसा हूं फिर भी हूं मैं तेरा ही कहलाता,
अपना विरद बचाने को ही क्यों न मुझे अपनाता।

ये पंखड़िया तव पद-तल में,
पड़ जावें यह इच्छा मन में।
कण कण से यह वहीं तुम्हारे पावन यश उच्चारें ॥
तेरा ही हूं प्राण हमारे ॥४॥

(९३)

।ओस-बिन्दु ॥

इस कोमल पाटल के दल पर ।
अभी अभी वह मुक्ता-कण सा था शोभित हँसता सा सुन्दर ।।
कितना ललित मधुरिमा युत था,
इन भ्रमरों का शुचि दर्पण था
पाटल का सर्वस्व बना था
रजनी का श्रृंगार मनोहर
मेरे अश्रु बिन्दु जैसा ही, प्यारा रीझ उठा था उस पर ॥१॥
वह वैभव, सौन्दर्य, तेज वह,
आह! एक क्षण में ही सब खो वह
गया कहां अस्तित्व कहां वह,
हलका एक समीर झकोरा,
उठा मिलाया उसको रज में टिक न सका उससे वह पल भर ॥२॥
किसे पता तब था इस क्षण का
क्या यह हाल सभी-जीवन का?
क्या यह जग-पाटल-दल क्षण का?
बना हमारा साथी सुन्दर
क्या अस्तित्व इसी रज में ही लय होगा यह पाकर अवसर?॥३॥

तब क्यों पाटल मुग्ध बनावे,
जाने कब अन्तिम क्षण आवे,
नहीं नहीं अब यों न बितावे
ओस बिन्दु अपना यह जीवन
क्या होगी यह स्वीकृत मेरा तनिक प्रार्थना? ओ नटनागर ! ॥४॥
आओ अभी समय क्यों देखूं
गिरकर तेरे पद-तल-धो दूं
जीवन क्षणिक सफल यह कर लूं
अभी अभी आ प्यारे गिरिधर.
जाने कब मुझको हर लेगा भीषण वह समीर अति निष्ठुर ॥५॥

(१४)

॥ हृदय से ॥

हृदय! क्यों इतने व्याकुल आज?
यह झूठी आशा अब छोड़ो, निष्ठुर वह व्रजराज ॥
कब तक यों ही तुम तड़पोगे,
अश्रु-रूप में बहा करोगे
क्या इतना कहना मानोगे?
वह न सुनेगा, अब भी मानो, तजो शोक का साज ॥१॥
हम अनाथ हैं दीन हीन हैं,
वे सुर पूजित त्रिभुवन-पति हैं;
बड़े बड़ों को अपनाते हैं,
इस अशरण भिक्षुक से उनका भला कौन सा काज ॥२॥
इस उलझन में कहां रहे तुम,
सारे जग से त्यक्त हुये तुम,
उसे न पाये अब तक भी तुम.
छोड़ो उसका मार्ग, सुधारो अपना इधर समाज ॥३॥
अरे! कहा क्या? यह कैसे हो—
जिसके जीवन का जीवन वह
जग छोड़े या चाहे जो हो

मत आवे वह पर रोना ही मम जीवन का काज ॥ध्रु॥
वह चाहे जितना महान है,
होवे, तो भी मेरा ही है,
उस पर मिट जाना यह प्रण है
यह जीवन तो है उसका ही ले या मेटे आज ॥ध्रु॥
हां, रो ओ तब व्याकुल होकर,
बहो बहो तो आँसू बनकर,
निश्चित कभी यहां वह आकर,
अपनालेगा, पिघल उठेगा, जीवन-धन व्रजराज ॥ध्रु॥

(१५)

॥ मन से ॥

ओ मन! एक बात सुन मेरी ।
और मान चुपचाप शीघ्र ही लगा न किंचित देरी ॥
साधन ध्यान न होगा तुझसे
चाल न चल भाई अब मुझसे
बहुत हो चुका मान अभी भी
कितने युग से लगा रहा है जन्म मरण की फेरी ॥१॥
सुख न मिलेगा इन विषयों में
दुख से भरे मधुर लखने में
भोगे हैं सब तो जीवन में
अब भी क्यों तृष्णा आशा ने बुद्धि मिटा दी तेरी! ॥२॥
चिन्ता क्या जो छूट न सकते
एक युक्ति से ये न रहेंगे
लोलुप! चिर सुख तुझे मिलेगा
आ आ बस आनन्द-नाद की झंकृत कर दे भेरी ॥३॥
कुछ न परिश्रम करना होगा
दरवाजे पड़ रहना होगा
राजरानी के, क्या यह होगा

होजावेंगे दूर अमंगल पूर्ण आश हो तेरी ॥४॥

सोच न, वे क्यों अपनावेंगी

अपना विरद बचावेंगी ही

नहीं अगर ठुकरावेंगी ही

तो भी दुलार पद-रज-पाकर भाग्य खुलेगी तेरी ॥५॥

मन मोहन निशि दिन मोहित हो

नाचा करता है बेसुध हो

एक बार आ अब आश्रित हो

बस मिटजावेंगे दुख तेरे मान विनय यह मेरी ॥६॥

(१८)

॥ व्रज-रानी से ॥

भव शरण तुम्हारी आया ।
उस नटखट से हार थका मैं किन्तु न उसको पाया ॥
जाने कब से कितने दिन से,
कितने युग कितने वर्षों से
ढूंढ़ रहा मैं व्याकुल उसको
छोड़ा उसने, भटक रहा हूं रोकूं किससे
उसने भव में भटकाया ॥१॥
यह सच है मैं मलिन हृदय हूं,
निशि दिन विषयों में ही रत हूं
दोष भला फिर भी क्या मेरा
शक्ति कहां है जो रोकूं मन को मैं तो निर्बल हूं,
डाली क्यों अपनी माया ॥२॥
हां बहुतों दयालु है! होगा
दीनबन्धु है हां सच! होगा
पर मैं तो यों तड़प रहा हूं
औरों को करुणा सागर अशरण शरणागति होगा,
मेरे तो काम न आया ॥३॥

फिर भी मेरा जीवन-धन है
उसके बिना शून्य जीवन है
क्या न प्राप्त कर सकता उसको
तव चरणों की ही आशा ले आया यह निर्धन है
हो कर कमलों की छाया ॥४॥
मैं अब और पुकारूं किसको
व्रज-रानी तज कर के तुमको
है वह एक तुम्हारे वश में,
प[illegible]ँगा अवश्य मैं उसको दे दो बस अपनी पद-रज को
आतुर हो विनय सुनाया ॥५॥

(१७)

॥ खंडहर-वासी ॥

क्यों तुम बार बार आते हो ?
भले पड़ा हूं इस कोने में अरे! तंग कर क्या पाते हो ?
ये टूटी फूटी दीवारें,
ये ईंटें जो बिखर रही हैं,
काई लगी जमी मिट्टी तृण उगे बहुत सी फूटी भी हैं।
चिर संगी हैं मेरे, इनको छुड़वाना क्यों मन लाते हो? ॥१॥
चमगीदड़ चिड़ियों के बच्चे,
स्यार, उल्लूक, कीट, मकड़ी सब
बहुत दिनो से साथ रहे हैं; अब भी हैं रहने दो इनको,
मेरा नहीं सभी का यह घर भाई हैं यह समझाते हो ॥२॥
वायु झकोरे ये दीवारें
वर्षा आतप टूटी छत यह
रोक, बचा लेती हैं मुझको; बस पर्याप्त और चिन्ता क्या,
लेता हूं न किसी का कुछ फिर मुझे हटाने क्यों आते हो ॥३॥
हानि तुम्हारी क्या करता हूं,
और भला तुम क्या सुख दोगे
इस एकान्त शान्त स्थल में हा मेरे दिन सुख से बीतेंगे,

ठहरो तनिक; भला निष्ठुर हो क्यों तुम यह सिखवाते हो ॥४॥
यहीं कभी इस कोने में ही,
तुच्छ दीखता है जो तुमको
कभी अवश्य जगत-जीवन-धन पाऊंगा त्रिभुवन-सुन्दर को,
यह कोना ही धन्य बनेगा क्यों मन में चिन्ता लाते हो ॥५॥

(१८)

आने दो

मत रोको आने दो

आया मुझ अनाथ के जी में,
श्री त्रिभुवन-नाथ के मन्दिर में,
आऊं दीन-बन्धु के गृह में,
रोक टोक क्यों!
ठहरो, ऐ प्रिय-चरण-सरोरुह हमको भी पाने दो ॥१॥

मैं चाहे जैसा जो कुछ हूं,
पापी हूं या नीच तुच्छ हूं,
सुनो त्यक्त गन्दा अछूत, हूं,
छोड़ो मत यों,
अपने जग-पावन स्पर्श से पावन बन जाने दो ॥२॥

है ही क्या जो कुछ लाऊंगा,
दीन भला भला मैं क्या पाऊंगा,
पर प्रभु तक कैसे आऊंगा,
यह इससे ही,
एक किन्तु सर्वस्व पुष्प मम, इसको चढ़ जाने दो ॥३॥

अपमानित ताड़ित हूं जग से,

भ्रम में भटक रहा हूं कब से,
मन भी है मुड़ गया इधर से.
अब करुणाकर
अपनी अभय शरण में आकर अमर गीत गाने दो ॥४॥
निष्ठुरता यदि तुम न करोगे,
तो हमको [illegible] आश्रय दोगे
दया सिन्धु हो विनय सुनोगे,
और न
रुक न सकूंगा, विकल हृदय को ललित भजन पाने दो ॥५॥

(१५)

॥ विषम विधान ॥

विधि यह तेरा विषम विधान।
जाने कितने नष्ट कर [illegible] नव कुसमों के प्राण ॥
अभी अभी जो विकसित होकर,
मधुर हास्य से खिला खोकर,
रवि शशि किरणों से मुख धोकर,
जग को अविरल गति से करते थे सौरभ का दान ॥१॥
देता वायु जिन्हें था-चुम्बन,
जिनका मधु पी मत्त भ्रमर गण,
यह पक्षी गण हरते जन मन,
जिन पर घूम घूम कर करते निज कल रव से गान ॥२॥
आज आज मधु-ऋतु जाने पर,
यह भीषण गर्मी आने पर,
हुये व्यतीत सुभगा के अवसर,
केवल कण्टक शेष रहे यह शुष्क हुआ उद्यान ॥३॥
रहा यही अंकित ललाट में,
खड़ा अभी जो इस श्मशान में;
खोकर सभी बन्धु निर्जन मे,
रहना होगा मुझे अकेले; था न कभी यह ध्यान ॥४॥

रंग बिरंगी चपल तितलियां,
वे छोटी छोटी मृदु कलियां,
लहराती लतिका वल्लरियां,
स्मृति पट पर आ मुझे रुलाती करती हैं मुख म्लान ॥४॥

सूख गिरीं पंखुड़ियां मेरी,
एक शेष अब रही अकेली,
उसे गिराने में कुछ देरी,
कर देना ओ प्रबल पवन! तू करुण विनय मम मान ॥५॥

इस देरी में वे आजाते,
अंतीम क्षण दर्शन होजाते,
पावन चरण स्पर्श हो पाते,
तो उन पर कर इसे समर्पित करता अमर प्रयाण ॥६॥

(२०)

॥ आशे ! ॥

आशे ! आज !
फिर क्यों आई मुझको छलने धर कर नूतन साज ॥
आह इसी सुरसरि के तट पर,
काटे कितने दिन रो रोकर,
चपल तरंगों को गिन गिन कर,
फिर भी निष्ठुर,
गया न तेरा भटकाने का नित-नव-नूतन-साज ॥१॥
लेकर के सौन्दर्य मनोहर,
प्रति दिनान्त में सन्ध्या आकर,
नभ पल नभ को अरुण बनाकर,
कपट दिखाकर,
शांति दिलाती मुझे, प्राप्त मैं करता मानो राज ॥२॥
ज्यों ही ज्यों बढ़ता अन्धेरा,
त्यों त्यों चपल हृदय यह मेरा,
प्रिय दर्शन पाने को तेरा,
उत्सुक होता,
किन्तु इसे क्या विदित अभी है गिरने वाली गाज ॥३॥

रजनी कर को देख देख कर,
नक्षत्रों से समय जानकर,
शेष समय पर निर्भर होकर,
निद्रा खोकर,
उठ उठ मार्ग देखता रहता सोता सकल समाज ॥४॥
नहीं नहीं मंजुल प्रभात में,
ऊषा के स्वागत समाज में,
फिर दिन सायं पुनः रात्रि में,
फिर ऊषा में,
यों ही काल व्यतीत कर रहा सजे शोक का साज ॥५॥
पर सब व्यर्थ प्रलोभन तेरा,
नहीं ! सत्य ही क्या तब मेरा,
यह जीवन का पुण्य सवेरा,
हृदय धैर्य धर
अरे भारहे झट प्रस्तुत हो देख स्वयं व्रजराज ॥६॥

(२१)

॥ भाग्यहीन ॥

जग में मैं ही हूं भाग्य हीन।
प्रिय चरण-[illegible]-रज से वंचित पापी अद्भुत [illegible]
है सुना [illegible] मीन मात्र,
सब के सब उनके कृपा [illegible]
रक्षा करते रहते [illegible] सब पर है उनका [illegible],
सर्वेश्वर सर्वज्ञाता व्यापक समदर्शी-करुणा [illegible]
तब तक अन्तर्ज्वाला मेरी,
[illegible] में फिर इतनी देरी
कर रहे, अरे क्यों [illegible], क्या नहीं उन्हें स्वीकृ[illegible] न ।
जग में मैं ही हूं भाग्य हीन ॥१॥

जग में मैं ही हूं भाग्य हीन।
पावस की सघन घटा में भी बैठा हूं हा! जो शोक-लीन
तृण-कुसुम-युत हर्षित हरी आज,
क्षिति का लख पड़ता नवल [illegible]!
कितना सुन्दर रम्य हृदय हर इनका सुखद विलास,
इन्द्र-वधू, खद्योत, कुमुदिनी, कास पुष्प मृदु [illegible]
नाच रहे हैं मत्त मयूर,

सुन मोहक मम ध्वनि कुछ दूर,
सब के सब ही हैं सुखी; भरा सब में उत्साह नवीन ॥
जग में मैं ही हूं भाग्य हीन ॥

[illegible] में मैं ही [illegible] हीन।
यह मधुर साज जो कृष्णपक्ष में शशि सा करता मुझे क्षीण।
कल तक जो केवल रिक्त रहा,
घन विद्युत-द्युति से पूर्ण हुआ।
नद नदियां नाले झील सरोवर [illegible] अपने कूल,
बहे जा रहे तुच्छ धनों [illegible] निज मर्यादा भूल।
झरते गिरि से कितने निर्झर,
नूतन कल कल ध्वनि युत भूपर।
वर्षा ऋतु पाकर, जड़ चेतन सब, हो जाते हैं मुदित पीन ॥
जग में मैं ही हूं भाग्य हीन ॥२॥

जग में मैं ही हूं भाग्य हीन।
जो अब तक भी रसवर्षाता सुन पड़ी न तेरी मधुर बीण।
पर सह न सकेगा हृदय और,
झड़ता है निष्फल आम्र मौर।
यही लालसा एक हृदय में रटता [illegible] रही है लाल!
तुम्हें न पहनाया निज कर से अश्रु-खचित [illegible]नमाल।

अब तो सब अपराध भूल के,

करुणा कर प्रभु विनय मान के।

छू देना अपने पद-नख से, मम चिता-भस्म प्यारे प्रवीण ॥

जग में मैं ही हूं भाग्य हीन ॥४॥

(२२)

" वह प्रश्न "

उठाओ मत वह प्रश्न पुराना
गूँथी जिसके प्रति अक्षर में करुण कथायें नाना,
हमारे अन्तस्तल में मित्र,
छिपे कितने दुख व्यंजक चित्र,
दुखी होगा लख तुम्हें, [illegible]
हृदय तेरा कोमल है, तूने क्यों ऐसा [illegible] ठाना ॥१॥
जगा कर पीड़ायें मेरी,
उर [illegible] में जिनकी ढेरी,
छिपी है अब तक बहुत [illegible]
कहो लाभ क्या होगा तुमको क्यों सहन [illegible] माना ॥२॥
तनिक ठहर वह राग मनोहर,
अभी बजा मेरे नटवर,
विह्वल बिमोहन रसमय [illegible],
किसे भला लगता है दुख में गाना और बजाना ॥३॥
सुन कर तेरे मधुर राग को
चन्द्र कान्त शशि किरण भाग [illegible]
भूल सभी अनुराग-त्याग को,

द्रवित हो उठेगा करुणा से मैंने निश्चय जाना ॥४॥
देखो मेरे व्यथित हृदय ने
मत छेड़ो दुख होगा तुमको,
रुको! देखकर इन नयनों को,
प्रस्तुत जो जलभरे जलद से शेष रह बर्षाना ॥५॥
क्षार अश्रु से अपने, प्यारे!
कोमल चरण सरोज तुम्हारे
धो देंगे ये बस न रहम.
अस्तु कृपा कर सको न अच्छा तुमको इन्हें सताना ॥६॥

(23)

॥ व्याध से ॥

मुझे न यह सब कुछ भाता है,
फिर भी निष्ठुर मेरे सम्मुख क्यों उसके वैभव गाता है ॥
कभी रहा यह मेरा प्यारा,
उन्नति ही आनन्द हमारा,
उसकी रही; किन्तु अब सारा
उसका यह मन मोहक वर्णन, मेरा हृदय जलाता जाता है ॥१॥
मेरे जीवन का हा हन्त !
आता पहला नवल बसन्त,
किन्तु कर लिया तूने बन्द
तनिक न लख पाया स्मृति में आ केवल अधिक कष्ट लाता है ॥२॥
कुछ दिन में ही सुन्दर उपवन,
पुष्पित होकर हरता जन मन।
चहक चहक कर करता चुम्बन,
प्रति मुकुलित कलिका का जब मैं किन्तु भाग्य तो यह लाता है ॥३॥
पड़ा हुआ तब कारा गृह में,
रहने दे हूं जैसे अब मैं,
जब न छोड़ना है उपवन में,

आया है वसन्त तब कहने अरे सताने क्यों आता है ॥४॥
अग्नि लगा दे आ उसमें अब,
शेष तड़पना ही सुनकर जब!
जाने प्राण तजेंगे [illegible] कब,
तब तक चुप रह; कह तो क्या तू दुख देने में सुख पाता है!॥५॥
अथवा आकर भी क्या होगा,
अब न आह! वह [illegible] होगा
अरे कहा क्या? यह [illegible]?
नित्य कुंज में वेणु बजाकर विश्व-विमोहन नट गाता [illegible]
व्याध छोड़ दो तब कुछ क्षण को,
लख लूं उस त्रिभुवन मोहन को,
सुन लूं अमर गीत फिर मुझको
चाहे जैसे रखना पर अब छोड़ो आह प्राण जाता है ॥६॥

(२४)

॥ भूल न जाना ॥

जाता हूं पर भूल न जाना

भूले भटके कभी इधर भी, हम भी हैं प्यारे तेरे ही।
नहीं सही उपवन में तो क्या, फिर भी है फल फूल यहीं॥
उतने ही हैं वैसे ही हैं, इन्हें ग्रहण करने के हित ही।
अपने कोमल कर से चुनने, एक बार बस आना॥
जाता हूं पर भूल न जाना ॥१॥

[illegible]ने कहाँ निवास बनेगा, किस जंगल का आश्रय होगा।
[illegible] दुल लता तृण वहां न होंगे, कंकड़ कण्टक का दल होगा॥
नित्य नित्य जल कहां मिलेगा, वृष्टि वारि ही सिंचन होगा।
आशा बस घन श्याम तुम्हारी, तुम्ही दया कर आना॥
जाता हूं पर भूल न जाना ॥२॥

आलबाल फिर कहां मिलेगा, नश्वर मर्कट का दल होगा।
छिन्न पत्र मेरे कर देंगे, आकुल व्याकुल मन होगा॥
काक-गृद्ध-बक का शाखों पर, अति कर्कश भीषण रव होगा।
सुन न सकूंगा कोकिल की ध्वनि, या बुलबुल का गाना॥
जाता हूं पर भूल न जाना ॥३॥

छोड़ रहा हूं [illegible] भूमि [illegible], प्रिय प्रसन्न करने को तुमको।

सुखी रहें ये चपल तितलियां, नव किसलय हों इसलतिका को ॥
कष्टों की न तनिक चिन्ता है, त्याग रहा हूं उपवन सुख को ।
पर इस तप का परम [illegible] भी, तो है मुझको पाना ॥
जाता हूं पर भूल न जाना ॥ ४ ॥

मेरे पल्लव के दोने में, ले लेगा मधुमय मम फल जब ।
पाकर मलय पवन का झोंका, तब ऊपर पुष्पों को मैं तब ॥
वर्षा दूंगा इस जीवन [illegible], हा विधि आयेगा वह दिन कब ।
भूल न जाना जल्दी आना मेरी प्यास बुझाना ॥
जाता हूं पर भूल न जाना ॥ ५ ॥

(२५)

॥ विदा ! ॥

विदा ! विदा ! बस आज विदा !
अरी कल्पने ! अरे प्रलोभन ! ओ सारे सुख साज ! विदा !!
विदा ! विदा ! हे ओ आशाओ !
छोड़ चला अब मत ललचाओ
जाओ इच्छित गति को पाओ
उसके पद-विमुख हीन-मति संशय शील-समाज विदा ! ॥१॥
स्वप्न संग के साथी मेरे,
गृह, कुटुम्ब, धन, जन सब तेरे
ले; तेरे ही पास पुनः ले
छोड़ रहा हूं; बस; बस; बस अब; माया-मय संसार विदा ! ॥२॥
क्या चिन्ता जो घन छायेगा,
उपल देह पर बर्षायेगा,
भीषण झंझानिल आयेगा,
पर स्वतन्त्र पक्षी के रक्षक प्यारे कारागार विदा ! ॥३॥
आने दो कण्टक-मय-पथ को
दुर्गम वन को गिरिशृंगों को
निकल पड़ी मिलने समुद्र को,

नदी वेग से तुच्छ सरोवर! तट-पर्ण-पुकार विदा! ॥४॥
अरुणोदय होने वाला है,
दिनकर तम-खोने वाला है,
चक्रवाक रोने वाला है,
अंधकार में रहने वाले निशिचर-भ्रम-मोहादि! विदा! ॥५॥
बीत रहा वर्षों सा प्रति पल,
चित्त हो रहा व्याकुल चंचल,
बहुत हो चुका बस अब मत छल,
छल न चलेगा उससे मिलने में; ओ माया-जाल! विदा! ॥६॥

(२६)

॥ प्रयाण की बात ॥

मत जा ओ प्राणों के प्राण !
प्यारे सुना न इन कानों को अपना कहीं प्रयाण ॥
देख ! जानता ही तो तू है
चपल हृदय यह मेरा बाहर है
युगल नेत्र भी मनमाने हो
बरस पड़ेंगे, माधव ! क्या न है अब भी अनजान ॥१॥
ये कोमल पद भला चलेंगे,
निष्ठुर ! मग में ; छाले युत हो
जलज नयन ये भर आयेंगे
आह शीत होगी या आतप अति कठोर अनुमान ॥२॥
हां सुख ही सुख तुझे मिलेगा,
कौन बंक हो देख सकेगा
सुन्दर श्याम ! द्रवित होंगे सब,
है उनकी क्या शक्ति सकें जो कर अनिष्ट भी ध्यान ॥३॥
किन्तु कहूं क्या ? कैसे मानूं ?
नहीं नहीं बस कहीं न जा तू
मुझे देख ! मैं तुझको देखूं !

खेल यहीं, कौतुक-मय ! बस अब इतना कहना मात ॥४॥
रो दूंगा मैं रूठ पड़ूंगा
बैठूंगा एकान्त देखकर
दौड़ोगे; आंसू पोंछोगे
फिर न कहोगे तब "आता हूं", है क्या इसका ध्यान ॥५॥
बस अब बहुत हो चुका आओ,
फिर न कभी यह क्रन्दन सुनाओ
नित्य नित्य प्यारे नट नागर
चंचल नटखट खेल संग ही यह आनन्द महान ॥६॥

(२९)

॥ मेरी गीत ॥

मत पूछो क्या है गति मेरी
कभी डूबता: उतराता फिर पावन स्मृति में तेरी ॥
भोला किन्तु चपल शिशु मन यह,
मचल रहा पाने को रह रह।
स्वप्न-सृष्टि के देव हमारे!
पर तूही कह।
भला कहां निश्चिन्त पायेगा निश्छल-मन की टेरी ॥१॥
दीप-शिखा पर यथा पतंगें,
लखकर भी तरल तरंगें,
तिनके पर ही यह पिपीलिका,
लिये उमंगें
चली लगाने आज पूर्णतः रत्नाकर की फेरी ॥२॥
मूक वेदना अन्तस्तल में,
वाष्प बिन्दु कुछ युग नयनों में,
धक धक करती उर ज्वाला की
छाया तल में
लिये कहां जाऊं! न पता माया-ममता-मति-घेरी ॥३॥

जीवन नभ में आधे क्षणको,
फैलाकर आलोक किरणको,
विद्युत से ज्यों छिपे जलदमें,
व्याकुल कणको,
तेरे जल के चातक ने घनश्याम! आह यह देरी ॥ ४॥

अरे चला था पाटल दलपर
हुआ बिद्ध कण्टक से मधुकर,
कितनी कोमल चाह किन्तु यह
हा विधि निष्ठुर:
दुखद अन्त; कर नहीं प्रतीक्षा; भौर लगा मत देरी ॥ ५॥

(२८)

॥ मेरी वेदना ॥

जागी आज वेदना मेरी।
अन्तस्तल में एकत्रित पीड़ा की लेकर ढेरी॥
कितना सुन्दर मृदुल भाव-मय,
था मेरा सुख-कलिका संचय,
पर उसका क्षय;
करती निर्मम वज्रपात सी बनी प्रलयकी भेरी॥१॥
शान्ति विनोद भ्रमर गण जिसके,
गुंजित थे छवि दल पर; उसके,
भव पंकज के,
प्रति कण कण में अग्नि लगा दी विरह व्यथा ने तेरी॥२॥
अर्द्ध रात्रि के भूमि-कंप सी,
अग्नि-मुखी-गिरि के जागृति सी,
दावानल सी,
अब आके मुझ मोद मगन को दुसह दशा ने घेरी॥३॥
पूर्ण बना था तव चरणों में,
कभी न यह आया था मन में,
इस जीवन में,

होगा तव वियोग पर हा! यह कुटिल काल की फेरी ॥४॥
किन्तु निराश्रय निर्धन होकर,
सिर-धुनकर अथवा रो रोकर,
तुमको खोकर,
काट रहा युग सा प्रति-पल आ और लगा मत देरी ॥५॥
शुष्क हुआ उद्यान देख कर
अपना फिर चिर-जीवन लेकर,
क्या नव-जलधर,
आता है? मधु-वर्षा करती मधुर मुरलिका टेरी ॥६॥

(२८)

॥ मेरा स्वप्न ॥

गया कहाँ वह मेरा स्वप्न ?
जाग उठा क्यों ! आह हुई क्यों मेरी निद्रा भग्न !!

था कितना सुन्दर संसार,
स्नेह मधुरिमा का अवतार,
वह [illegible] सुन्दर व्यवहार,
करते एक दूसरे को थे प्रेम-सिन्धु में मग्न ॥१॥

उस नीले नभ से भी सुन्दर,
नक्षत्रों के कन्दुक लेकर,
खेल रहे थे उछल कूदकर,
रवि-शशि दोनों शिशु मिलने का हममें करते यत्न ॥२॥

पुष्प लिये लतिका-वल्लरियां,
छूकर हंस देतीं मृदु कलियां,
निज पङ्खों से चपल तितलियां,
व्यजन डुलातीं तथा नृत्य कर करतीं हमें प्रसन्न ॥३॥

कभी तोड़ कर मृदुल कमल-दल,
कभी उठा नभ-गंगा का जल,
ताड़ित कर हँस उठता वह छल,

मधुर हास्य से जब हंस देते था ब्रज-मंडल-रत्न ॥४॥
नेत्र खुल गये पर इतने में,
फिर इस दुख किना समुद्र में,
द्वन्द्व द्वेष परिपूर्ण मोह में,
हुआ भ्रमर सा जो गर्भ में होवे कण्टक लगन ॥५॥
पर यदि वह था भ्रम में मैं तब,
सत्य यही जो प्रगट हुआ अब,
जाग्रति सत्य त्यागता हूं जब,
तो प्रिय नित मैं भ्रम में भटकूं, देखूं तेरा स्वप्न ॥६॥

(३०)

॥ क्यों हा हाकार ॥

विश्व में इतना हा हाकार।
मचा हुआ किसके वियोग में किसका शोक अपार॥
यद्यपि हँसते हैं कुछ क्षण को,
पर रोते हैं जीवन भर को।
अपने तन को धन को मन को,
पुत्र पौत्र को दारा गृह को यश को आह पुकार॥१॥
व्याकुल चंचल सुख पाने में,
लिपट रहे हैं तुच्छ विषय में,
भटक रहे हैं सब मृग जल में
फिर पाते, फिर व्याकुल होते, यों ही बारम्बार॥२॥
यद्यपि दन्त रक्त ही स्वाद,
पाकर रहा वह अज्ञान,
शुष्क अस्थि पर इतना मान
गुर्राता लख अन्य श्वान लड़ पड़ता शून्य विचार॥३॥
चला एक था इस प्रवाह में
किन्तु अनेकों मिले राह में,
अलग [illegible] फिर कुछ क्षण में,

— ५५ —

उनसे क्यों यह मोह और क्यों अतुल शोक विस्तार ? ॥४॥

गहन विपिन में मार्ग भूलकर
प्रेत दीप आलोक देखकर
आश्रय पाने को सब सत्वर
दौड़ रहे पर क्या पायेंगे दलदल से निस्तार ॥५॥

ठहरो ! मुड़ो दूसरी ओर
ज्योति धाम जन श्याम किशोर
सुख-निधि व्रज-सुन्दर का छोर
पकड़ो, तोड़ो मोह पाश, छोड़ो [illegible] का द्वार ॥६॥

—— ५५

(39).

॥ हमारी भूल ॥

हां यही [illegible] नाथ भूल।
जिससे अब तक तव चरण-कमल की मिली न मुझको आह! धूल॥
उगा, बढ़ा पल्लवित हुआ
माली! तूने जल-दान किया
कलिका लेकर फिर फूल उठा
मद भरा भ्रमर ने मधु लूटा
मुग्धा तितली का पंख व्यजन
कुछ ध्यान [illegible] कर सुरभि-दान था पवन-हिंडोले रहा झूल ॥१॥
रक्षक! तुमसे ही रक्षित हो,
सुनता था मंजुल रव-बिहंग
अभिमान भरा था अन्तर में
सौन्दर्य देख करके अपना
शोभित करता था उपवन को
कुछ ज्ञात न था सिर से पैरों तक लदे हुये हैं लक्ष शूलें ॥२॥
क्या हुआ! अरे ज्यों वज्र-पात!
अज्ञात अचानक हुआ आज,

वह गया कहां हा! मलय-पवन
अथवा मेरा प्यारा वसंत
चल पड़ा ग्रीष्म का उष्ण वात
चू पड़ा पास ही जड़ के वह सर्वस्व दीन का प्राण फूल ॥३॥
बिखरीं पंखड़ियां कीचड़ में
लथ पथ होकर अति म्लान हुईं,
वे भ्रमर तितलियां वन-विहंग
सब कपट स्वार्थी से हुये,
रस-हीन हुआ अब क्यों आवें
पद-दलित बनाते वही आज जो चूम रहे थे कभी मूल ॥४॥
हूं अब दुर्दिन में सोच रहा
क्यों होती यह दुर्गति मेरी,
सुरसरि पा जाता मैं प्यारे!
सब मुझे झुकाते नम्र शीश
पर नाहि क्षमा हो नाथ भूल
तव माया-मोहित चरणों पर कर सका न अर्पित वही फूल ॥५॥

(३२)

॥ वह धूलि ॥

प्रभु! क्या पाऊंगा वह धूलि?
जिन पर न्योछावर हैं शत [illegible] कल्पवृक्ष के फूल ॥
जिसके कण को ही पाकरके
धन्य भाग्य होते विधि हर के
पाते नहीं तरसते जिसको
व्याकुल रहते हैं पाने को
योगी गण, ऋषि गण, मुनिगण सब निज समाधि-सुख भूल ॥१॥
भव-रुज की अति पावन भेषज
वृन्दावन की पावन गोरज,
जिसको रमाया जिसमें लोटे
थे; तुम भी अपने को भूले
वही जगत-त्रयताप-विनाशिनि सकल-सुमंगल मूल ॥२॥
तेरे पद-पंकज से अंकित
गोपी-गो-चरणों से खुन्दित
प्रेम-पूर्ण प्रेमानन्द-दायिनि
आह्लादिनि, दुर्लभ, मन-भावनि
लगा शीश से क्या पाऊंगा मेरे हृदय का [illegible] ॥३॥
अति कोमल किसलय दल से भी

दयामयी माता-हृदय से भी
उन करील-कुंजों से शोभित
मन हो उठा अशान्त विमोहित
करुणामय क्या मैं पाऊंगा वह यमुना का कूल ! ॥४॥
जीवन की ऊषा आने दो
शशि को अमृत बर्षाने दो
पाने दो बसंत उपवन को
प्रिय बुलबुल के प्राण कुसुम को
पाने दो पाने दो मुझको अपनी प्यारी धूलि ॥५॥

(३२)

॥ वह राग ॥

सुना आज मोहन वह राग ।
उमड़ पड़े इस वज्र हृदय में भी तेरा अनुराग ॥
उमड़ पड़ें सरिता निर्मल भर
उमड़ पड़े वह विस्तृत सागर
उमड़ पड़े भक्तों का अन्तर
उमड़ पड़े आनन्द मगन हो सुन त्रिभुवन वह राग ॥ १॥
तनिक अधर पर धर मुरली को
भरदे अधरामृत से उसको
धर छिद्रों पर कोमल कर को
गुंजित कर दे जल थल नभ को जगे हमारे भाग्य ॥ २॥
इन छिद्रों को देख न प्यारे
पाकर नख-मणि-चक्र तुम्हारे
वह ध्वनि कर देंगे ये सारे
मुग्ध बनेंगे सुन योगी गण व्रत-समाधि-सुख त्याग ॥ ३॥
हृत् तन्त्री उस स्वर-लहरी से
हो झंकृत प्रत्येक रोम से
प्रेम पूर्ण अमृत मय ध्वनि से

तुम्हें पुकारूं चिर-दिन-खोया अन्तर जावे जाग ॥ध्रु॥

जीवन उपवन गुंजित होवे

हो प्रफुल्ल मंगलमय होवे

कंटक कीट की ग्रीष्म ऋतु खोवे

कर वर्षा घन श्याम बुझादे इस उपवन की आग ॥१॥

फिर आना, गाना, सुख पाना

पत्र पुष्प प्यारे ले जाना

दर्शन [illegible] पद-रज दे जाना

पहले अपनी ध्वनि से मेटो अर्धजले ये राग ॥२॥

(३४)

॥ नदी-द्वीप का पुष्प ॥

भूल गये तुम भाग्यहीन मैं ।
नहीं अगर तो मेरे प्रभुवर इस निर्जन में आता ही क्यों ? ॥
जाने किस उपवन की संतति
पाकर जल धारा की संगति
आया इस निर्जन में दुर्गति
अपनी करने नित्य तरसते, भाग्य हीन की संतति हूं मैं ॥१॥
यहां खड़ा श्मशान यूप सा
एक, दीन अति महा तुच्छ सा
है इस जग में भी कुछ सुख सा
कैसे, क्योंकर, कब या किससे तुम्हीं कहो सुख पाता फिर मैं ॥२॥
तृण न एक भी आस पास है
चारों दिशि मरु का निवास है
अति कराल शून्यता हास है
खड़ा अकेला कर्म-दोष से कबतक यह दुख पाऊंगा मैं ॥३॥
चारो ओर गँभीर भ्रमर हैं
नौकादिक की यहां न गति है
मधुकर कोकिल कथा भ्रम हैं

जीवन भर मैं रहा अकेला क्या यों ही गिर जाऊंगा मैं ॥४॥
ग्रीष्म वायु तो कठिन सभी को
मधु ऋतु भी है दुखकर हमको
उड़ा वायु इस शुष्क रेत को
ढंकता रहता उस ऋतु का भी और कहां सुख पाऊंगा मैं ॥५॥
यद्यपि मरु भाई दुख पाते
पर पावस में तो हर्षाते
वही जलद जो जीवन लाते
पूर नदी में ला देंगे सब डूब उखड़ सड़ जाऊंगा मैं ॥
गरुड़ासन यदि तुम आ जाते
तोड़ करों से चरण लगाते
सब पुष्पों से धन्य बनाते
वे तो मूर्ति मात्र पाते हैं किन्तु तुम्हें ही पा जाता मैं ॥७॥

(३५)

॥ चन्दन-तरु ॥

भूला था मैं देख न पाया ।
जिसे त्याज्य था तुच्छ समझता वही धन्य हो आया ।
निज सुगन्धि मद मत्त भुलाया
जान उसे तब मैं सकता था
कहां ऋषि सुर नर सेवित मैं, क्या वह तुच्छ असार
हृदय-हीन अपने कुल का ही वह करता संहार
नाना विधि योंही विकल्पकर
किया दूर मैंने ठुकरा कर
अन्य वृक्ष निज सम कर डाले उसे न कंठ लगाया ॥
भूला था मैं देख न पाया ॥१॥

भूला था मैं देख न पाया ।
यही ध्यान था अग्नि लगाकर इसने हमें जलाया ॥
द्वेष बुद्धि थी मेरे मन में,
शून्य न था कुछ भी तो उसमें
राग द्वेष से बहुत दूर वह हम से उच्च महान
किन्तु हमारी नीच दृष्टि में रहा महा अज्ञान
यद्यपि सब तरु अपने सम ही

किये, न उसको किंचित कुछ भी
निज सुगंधि का किया दान, याचक बन कभी न आया ॥
भूला था मैं देख न पाया ॥२॥

भूला था मैं देख न पाया
जिसे समझता था दूषण वह ही तेरे मन भाया ॥
अपना शून्य हृदय वह तुमको
जो अत्यन्त बुरा था मुझको
हृदय वेध कर छिद्रों द्वारा प्यारे तुझे दिखाया,
मुग्ध हुआ अपने को भूला हंसकर अधर लगाया
पास न उसके था कुछ फिर भी
शून्य हृदय ले पर उसके ही
मन भाई निज स्वर लहरी से त्रिभुवन मुग्ध बनाया ॥
भूला था मैं देख न पाया ॥३॥

भूला था मैं देख न पाया।
शून्य हृदय होने के कारण इसने तव स्वर गाया ॥
निज अधरामृत पूरित करके
कर कमलों अधरों पर रखके,
श्री शंकर, विधि, सुरपति दुर्लभ उसका भाग्य बनाया
मद मोहित मुझ अभिमानी को क्या प्रभु उसकी छाया

कभी मिलेगी ? अध्यरामृत तो
भला कहां, दे दो पद-तल तो
बीते बहुदिन बिषधर भूषित फिर भी चेत न आया ॥
भूला था न मैं न पाया ॥४॥

भूला था मैं देरन न पाया।
अपमानित कर तुम्हे बहुत दिन मैंने कष्ट उठाया ॥
प्यारे वेणु वन्दना तेरी
इतना विनय नाथ से मेरी
ओ दयालु ! अपराध किसी के तूने हृदय न लाया,
अंगराग वह करले मुझको कहो प्रार्थना लाया
यह सुगन्धि यह गुण सब मेरे,
प्यारे व्यर्थ दया बिन तेरे
अतः न कर अब देर वही तरु शरण तुम्हारी आया ॥
भूला था मैं देरन न पाया ॥५॥

(२६)

॥ वह घड़ी ॥

आई हां आली वह आई
जीवन सफल बनाने वाली पुण्य घड़ी वह आई।
मधुकर रहा प्रतीक्षा करता
निशि दिन जिसकी बाट निरखता
मुग्ध बना युग सा दिन गिनता
वही कली देखो उपवन में मुकुलित पड़ी दिखाई ॥१॥
रो मत, मत दुख ला उर चातक
बीते दिन वे जीवन घातक
सहे कष्ट अति तुमने अबतक
अब हर्षित हो स्वाती-घन की घटा गगन में छाई ॥२॥
अरी कुमुदिनी! लज्जा शीला
देख तनिक प्रियतम की लीला
कर घूंघट-पट दूर हठीला
लाल किये मुख प्राची निशिकर को कर धर लाई ॥३॥
नाच मत्त हो अरे मयूर
सुन सुन घन-रव तू भरपूर
हुये ताप गर्मी के दूर

तुझको प्यार जताने प्रिय ने यह चपला चमकाई ॥ध्रु॥
सूख गया था सर यह सच है
सत्य किन्तु अब क्यों तड़पन है
हर्षाओ, तव स्नेह अगम है
अतः भूल कैसे वह सकता जल धारा बर्षाई ॥ध्रु॥
यह कम्पन क्यों यह मूर्छा क्यों?
भला इस समय आंसू कण क्यों?
ओ पगली! निकल तू भव यों
होने; बना स्वागत समाज; गा कीर्ति देव-गण गाई ॥ध्रु॥
मेरे वचन असत्य समझकर
मत चिन्ता कर आतुर होकर
उछल आवें स्वयं लिवाकर
अरे आ गया! सुन! मनमोहन-मुरली पड़ी सुनाई ॥१॥

(३९)

॥ वह दिन ॥

क्या न कभी वह दिन आवेगा ?
यह निर्धन जीवन-धन-धाम में हर्ष अश्रु जब बर्षावेगा ॥
सारी आशा एकत्रित कर,
ऊर्ध्व दृष्टि तन मन सुधि तज कर,
स्वाती-घन में ध्यान लगाये,
कुछ बूंदों से
तृषित प्रेम विह्वल चातक क्या कभी न तृषा बुझा पावेगा ?॥१॥
यद्यपि शेष रहे कंटक अब,
आवेगा मधुऋतु मधु ले जब,
हरे भरे कुसुमित पाटल के
सुन्दर दल पर
क्या न मगन हो चहक चहक कर मधुर राग बुलबुल गावेगा ?॥
आह शुष्क हो गया सरोवर,
छिन्न भिन्न है उसका अन्तर,
पड़ीं दरारें तप्त हो रहा
पर पावस में
कितनों का आश्रयीभूत हो क्या न पूर्णतः भर जावेगा ?॥३॥
छाया महा घोर अन्धेरा,

पर होगा जब पुण्य सवेरा,
जल थल नभ को रंजित करके
शुभ प्रभा में
क्या न भास्कर निज किरणों से सकल जगत को हर्षायेगा। ॥४॥
यों ही मैं यद्यपि दुःख रूप,
पर क्या सुख-निधि त्रिभुवन-भूप;
लख मेरे आंसू दयालु हो
दया-सिन्धु बन
अपनी विश्व-विमोहन मंजुल-मूर्ति न मुझको प्रगटावेगा? ॥५॥

(३२)

"वह दिन आयेगा"

कभी नाथ वह दिन आयेगा?
जीवन-धन! निर्धन यह अपना धन तेरे पद-रज पायेगा!!
पतझड़ है सूखे सेतल हैं
शोभा-रहित मलीन हीन हैं
पर यह उपवन,
नव किसलय-दल, आम्र-चूत, विकसित कुसुमों से भर जायेगा!!
अमा-रात्रि है अंधकार है
सूझ न पड़ता अपना कर है
पन्द्रहवें दिन
पूर्णचन्द्र अपनी किरणों से सुधा-वृष्टि कर हर्षायेगा!!
आच्छादित नभ है घन घन से
पूर्ण हो रहा झंझानिल से
कड़क चमक है
किन्तु दिवाकर कुछ देरी में जग-प्रकाश करता आयेगा!!
दुख घेरे हैं जीवन-नभ को
चिन्ता मोह शोक भ्रम मन के
सब कुछ है पर

कितने दिन को, भ्रमणशील भग, भाग्यचक्र मन पलटायेगा ॥४॥

यों ही तुम भी दूर भगे हो
दीनों के पर कंठ लगे हो
यह अनाथ भी
कभी एक दिन निश्चय तेरी करुणामय! करुणा पायेगा ॥५॥

कभी आर्त हो विकल होकर
यदि चिल्लाऊंगा प्रभु ...कर
उस अवसर पर
मृदुल हृदय तव बस न रहेगा तुरत द्रवित हो भर आयेगा ॥६॥

रह न सकोगे तुम आओगे
अपनाओगे, हर्षाओगे
देख दृगों से
भव्य मूर्ति तव छूकर कर से धन्य धन्य यह हो जायेगा ॥७॥

(३८)

॥ काँटा ॥

एक बार मेरी भी ओर।
दृष्टि फेरना करुणा करना समदर्शी चितचोर ॥

करते भ्रमर गान गुण उनका
नृत्य नित्य ही तितली गण का
आदर सकल विश्व में जिनका
क्योंकि परोपकार व्रत उनका
पर मैं महाकठोर ॥१॥

वे सुगन्धि से भरे हुये हैं
अति सुन्दर मधु लिये हुये हैं
कोमल किसलय सजे हुये हैं
सुन्दर मोहक दल के युत हैं
करते विश्व विभोर ॥२॥

पर मैं तीक्ष्ण नोक से अपनी
दुख देता दे सकता जितनी
पीड़ा भी पाता हूं उतनी
निर्दयता की मूर्ति समझनी
मेरी सत्ता कोर ॥३॥

अतः जगत भर केवे प्यारे
पलकों पर मस्तक पर धारे
सुर मुनि ऋषि नर किन्नर सारे
तुम भी प्यारे नन्द दुलारे
करते प्रेम किशोर ॥४॥

सब ने मुझे फेंक ठुकराया
मुँह तोड़ा, जूतों ठुकराया
दूर हटाया त्याज्य बनाया
कर्म किया फल मैंने पाया
दोष न उनकी ओर ॥५॥

महा गुणी वे सुखदाता हैं
मृदुल हृदय सबको भाता है
क्यों न उन्हें आदर जग देवे
क्यों न उठावें शीश चढ़ावें
वे धन हैं जग मोर ॥६॥

हृदय हीन अपकारी परका
सो भी कारण रहित दूसर का
यह अपमान बहुत कम सबका
तुम समदर्शी फिर तब तो क्या

तुम्हें दयालु कठोर ॥७॥
मैं न प्यार चाहूंगा उन सम
प्यारें आदर मत दो वह तुम
जितना तुम्हारा जो वह सब कम
किन्तु तनिक [illegible] पावें हम
बस ब्रज-राज-किशोर ॥८॥

(४०)

" तन्त्री "

गूंजे एक बार संसार !
इस हृत-तन्त्री के तारों से निकले वह झंकार ॥

धूल धूसरित हुए भी हैं
पड़े युगों से ये यों ही हैं
धूल झाड़ कर इन्हें जोड़ले
बजाना, पहले इन्हें सुधार ॥१॥

ध्वनित हो उठे जल थल नभ तल
कांप उठे ब्रह्मा का शतदल
उद्वेलित होवे सागर-जल
बहा वह प्रेम सरित की धार ॥२॥

कांप उठे कलि का सैनिक दल
क्षुब्ध हो उठे, आवे वह पल
छिन्न भिन्न होवे सारा बल
सुखी हो सज्जन-वृन्द अपार ॥३॥

दुष्ट जनों को पाञ्चजन्य-रव
भक्तों को शुभ प्रेमासव-द्रव
रोमांचित गद्गद् होवें सब

भरा हो प्यारे तेरा प्यार ॥४॥

तेरे कोमल कर से लगकर
निकले वह स्वर लहरी सुन्दर
कांपे. मोहित हो त्रिभुवन भर
उठा ले फिर वीणा इस बार ॥५॥
इसी बहाने मे तन्त्री मोहन धन्य बनादो
एक बार इन उलझे तारों को कर से सुलझादो
प्रेममयी स्वर लहरी अपनी अन्तर में गुंजादो
बजादो मेरे नन्दकुमार! ॥६॥

(८९)

॥ आंसुओं से ॥

यों न व्यर्थ निज जन्म गवाँओ ।
ठहरो रुको अरे आतुर हो अभी न बाहर आओ ॥
ओ मेरे सर्वस्व सहारे
तुम्हीं एक अवलम्ब हमारे
तेरे ही आश्रय हम सारे
तुम से आशा
प्राप्त करूंगा अनन्त [illegible] । अतः न यों बह जाओ ॥१॥
मूल्य न तुम्हें ज्ञात है अपना
भूल रहे हो इससे इतना
सोचो तो आदर तव कितना
जगदीश्वर भी
देख तुम्हें दौड़ा आता है; क्यों न उसे तुम पाओ ॥२॥
मेरी पीड़ा के सुत केवल
क्षार मात्र कण तू न बिन्दुजल
शत शत उद्गारों का तू बल
रुक ओ चंचल
किया बहुत दिन से संचित है तुम्हें; न आज मिटाओ ॥३॥

निकल धूल में मिल जाओगे
कहो भला तो क्या पाओगे
क्या फिर फिर जग में आओगे
नहीं रहो
इस भीषण दुर्दिन में [illegible] हे प्रिय मत बाहर आओ ॥४॥

अभी न वह नटखट आया है
अभी न नभ में घन छाया है
तप्त व्याप्त आतप छाया है
इस अवसर में
कांटो में खिलना दुख सहना; इधर न पैर बढ़ाओ ॥५॥

किन्तु न यह सब दिन ऐसा ही
बना रहेगा कुछ दिन में ही
आवेगा वह छन निश्चित ही
तब तक ठहरो
किसी तरह भी धैर्य हृदय धर उतना समय बिताओ ॥६॥

हां जब वह जीवन-धन आवे
अपनी बांकी मूर्ति दिखावे
अमृत वृष्टि कर मुरली बजावे
भूल न जाना
आ को देना बस पद-पल्लव मेरी बात बनाओ ॥७॥

(४२)

॥ विपद्‌ग्रस्त ॥

आज इसी क्षण देर न भाई।
यह आपत्ति मिटाने आओ मृत्यु घड़ी यह आई॥
सुखी रह यद्यपि न तभी मैं
किन्तु न ऐसा था कुछ मन में
पर जीवन में
यह दिन यह विपत्ति तो मैंने प्यारे नहीं उठाई॥
बचा बस प्राणों पर बन आई॥१॥
चंचल था अस्थिर मन पृथा
ढूंढ़ रहा सुख विषयों में था
शान्त इसे लख
क्रीड़ा करने की धुन इसमें मेरे चित्त समाई॥
कुछ न तब सूझी यह कठिनाई॥२
चला उमंगे लिये मोद से
दूर हुआ उस विमल कूल से
ठीक मध्य में
उठी घटा, चमकी चपला झंझानिल को भी संग लाई॥
करूं क्या? पोत डूबने आई॥३॥

भीषण लहरें लहराती हैं
अभी अभी खाये जाता हैं
वज्र-पात भी
बार बार, यह दृष्टि प्रलय की हाय न पड़े दिखाई ॥
दीन तरल अब सबकी नव नाईं ॥४॥
छिन्न भिन्न लो पोत हुई अब
जाने निठुर आओगे कब
आर्त हो रहा
शिथिल गात्र पड़ गए अरे! क्या सचमुच पड़ा सुनाई? ॥
तुम्हारी यह पद-तल ध्वनि आई ॥५॥

(४३)

॥ अपार वेदना ॥

वेदना मेरी दरबद अपार।
भरे हुये शत शत आशा के हैं इसमें उद्गार॥

बुझते हुये दीप-कलिका का अन्तिम दीप्त प्रकाश
गूंज रहा कितनी पीड़ा का निर्मम निर्दय हार
अरे ठहर मत छेड़ इसे यह भर देगी आकाश
व्यग्र होगा तू करुणागार ॥१॥

नीर स्वयं तो अग्नि संग से जलता ही है आह
प्यारे क्षीर व्यर्थ क्यों अपना तुम करते तन-दाह
बुझा न सकता इसको भाई सुरसरि-प्रबल प्रवाह
अग्निवह यह प्रज्वलित अपार ॥२॥

तनिक धैर्य धर विकल न हो ओ मेरे प्यारे मित्र,
डर मत यद्यपि यह भीषण है फिर भी परम पवित्र
सच हैं जो इसके दिखलाये तुमने मुझको चित्र
भरा पर इसमें उसका प्यार॥३॥

हां न भूल भी पास किन्तु तू इसे छेड़ने आना
इस विचित्र पावक में अपना सुन्दर हृदय जलाता
सुनो मुझे अभ्यास हो गया मेरे मन ने माना

इसी पीड़ा में सुख का सार ॥४॥

भाई ! अब इच्छा है योंही यह उसका विरहानल प्रतिपल
रहे प्रज्वलित शान्त न होवे मैं तड़पूं उसमें जल प्रतिपल
नाम नित्य जिह्वा पर उसका मन उसके विहीन हो व्याकुल
यही हो जीवन का आधार ॥५॥

बस योंही रो के दिन काटूं कभी सदय वह आजावेगा
कभी द्रवित हो मोहन अपनी मोहन मुरली सुना जावेगा
तृप्त करेगा तृषित हृदय को प्रेमामृत बर्षा जावेगा
करेगा कभी प्रगट हो प्यार ॥६॥

(५४)

॥ करील की कुंजे ॥

नटनट ! ये करील की कुंजें ।
क्योंकर के तेरे मन भाईं जिनमें कभी न अलिगण गुंजे ?॥

कांटों से लदी लतायें
निष्पत्र नग्न दिखलायें
क्या तूने इनसे पाये !
होगईं भवन से बढ़कर जो तेरा निवास ये कुंजें ॥१॥

क्या मुग्ध हुआ पुष्पों पर ?
निर्गन्ध किन्तु सुन्दर पर
अथवा इनके उस फल पर
जो स्वाद हीन पर निज धन नित देतीं दीनों को कुंजे ॥२॥

ठुकराकर नन्दनवन को
सुन्दर मंडित उपवन को
ढूंढे करील-जंगल को
क्यों इतना आदर देते ? क्यों तुमको प्यारी कुंजें ॥३॥

हां पर सुगन्धि के मद से
मत वाले अपने पद से
प्यारे न, तुम्हे इस ढब से

प्यारी तुम[illegible] हैं नंगी निष्पत्र हरी ये कुंजें ।।४।।
पत्रों में नही छिपाया,
अन्त[illegible] अपना दिखलाया,
अपनी लतिका [illegible] छाया,
अर्पण कर पातीं तुमको हैं धन्य धन्य ये कुंजें ।।५।।
सौरभ है नहीं न रस है
पर इनका क्या कुछ वश है
जो हैं दें वह फल यह बस है,
तू प्रेम-चाहता प्यारे देखा न कंटकित कुंजे ।।६।।
प्रिय लख कंटकित हुईं या
प्रफुलित सुख हरी हुईं या
तुम्ह से ये नग्न हुईं या
गोपी-वस्त्रों से पत्ते हर लिये मुझकीं ये कुंजें ।।७।।

(४५)

॥ वही ज्योति ॥

वही ज्योति बस ज्योति वही।
तुच्छ ज्योति ज्योति ये उससे, अन्धकार ये ज्योति वही ॥
रंग बिरंगी दिखलाती हैं,
जिन्हें न आंखें लख पाती हैं।
उसका एक सहस्र अंश भी है न इन्होंने पाया,
हैं ये सब उस नील ज्योति के तुच्छ अंश की छाया।
इन्हें देख मत मुग्ध चकित हो
उठ आ उस प्रकाश के युत हो।
सुख स्वरूप वह, सब दुख नाशक, दीनानाथ, दयालु वही ॥
वही ज्योति बस ज्योति वही ॥१॥

वही ज्योति बस ज्योति वही।
ओ रस लोलुप मम मन मधुकर! तेरी तुष्टि-निवास वही ॥
ये सब सुख-सागर के सीकर,
सो भी दुख मय सुमन इतर।
इस चम्पा के वन में कह तू भूल [illegible] से आया,
अरे स्वभाव विरुद्ध वनज-वन-तज इसको अप[illegible]
रस न मिलेगा शान्ति न होगा

कब तक तू यों ही भूलेगा।
रस-निधि, सुन्दर, मनहर, पावन, तेरा शान्त निवास वही॥
वही ज्योति बस ज्योति वही॥ २॥

वही ज्योति बस ज्योति वही
एकबार लालसा यही है देखूं तेरी ज्योति वही।
पर निष्ठुर तू कब मानेगा,
अपना कब मुझको जानेगा।
मैं तो जो हूं जैसा हूं वह [illegible] तुम्हे सब है ही,
किन्तु तुम्हारी पतित-पावनी कीर्ति विदित जग है ही।
उठा चक्र फिर एकबार [illegible],
पाप ताप संताप मिटा प्रिय।
गज, गणिका, पाहन-गण-तारक अपनी कीर्ति सँभाल वही॥
वही ज्योति बस ज्योति वही॥३॥

वही ज्योति बस ज्योति वही।
करे प्रकाशित नभ-तल-सारा हो मुरली की तान वही॥
हों मोहित रवि-शशि सुर सारे,
हर-विधि गावें सुयश तुम्हारे
तेरे पद पर मस्तक रखकर उसे अश्रु से धो दूं,
तेरे कर का सुखद स्पर्श पा माया ममता खो दूं।

हृदय कमल मुकुलित हो जावे,
तेरे मंगल मय यश गावे,
कर प्रगटित दिन... के दिनकर अपनी प्यारी ज्योति वही।
वही ज्योति बस ज्योति वही ॥४॥

(४८)

॥ पावस की घटा ॥

वह पावस की घटा मनोहर
छाये जीवन-नभ में मेरे जीवन दात्री सुन्दर।
पहले अंधकार छायेगा
तड़पेगा डर दिखलायेगा
यों ही वह क्योंकर आयेगा
होने दो ये भी प्यारे हैं
उसके संगी कष्ट प्रद हो कैसा कुत्सित अन्तर ॥१॥
वज्रपात होगा, क्या चिन्ता
चमकेगी चपला, क्या चिन्ता
उपल वृष्टि होगी क्या चिन्ता
इप्सित ही मेरे सारे हैं
भला कहां वह भाग्य बरस जावें वे मुझ मरु भू पर ॥२॥
देगा मुझे वह जीवन
जिससे पुष्ट रहेगा सब मन
कभी सफल कर मेरा जीवन
दिश विदिशों को रंजित करके
उठ आयेगा त्रिभुवन सुन्दर इन्द्रधनुष वह उसपर ॥३॥

फिर इतना वह बढ़ जावेगा
सारे जग में छा जावेगा
ले लेगा हां अपनावेगा
शत शत रवि शशि लज्जित होंगे
प्रकृति, वायु, जल स्तम्भित होंगे उसकी शोभा लख कर ॥४॥
यह चातक प्यासा है कब से
देख रहा पथ तेरा कब से
भय न तिमिर से वज्रपात से
सुख स्वरूप घनश्याम दयाकर
इन्द्रधनुष सा तड़ितांबर युत आ, छा जा, गा, सत्वर ॥५॥

(४१)

॥करुणा-क्रन्दन॥

माधव! मेरा करुणा-क्रन्दन!
कभी सफल भी होगा? होगा अथवा व्यर्थ नाथ यह जीवन?!
आर्त नाद में मैं सागर के,
तप्त हृदय में मैं दिनकर के
मिल पुकार में मैं चातक के
प्रिय तेरे हित
रोता हूं, हूं हृदय जलाता नित पुकारता हो आकुल मन ॥१॥
सारा जग मुझसे न्यारा है
तू ही केवल सुसहारा है
आंसू ही मेरा प्यारा है
कब मैं देता
यह अपना सर्वस्व तुम्हें क्या लोगे! मेरे प्यारे मोहन! ॥२॥
~~[illegible]~~ देखना नहीं न चाहा सुख को
उर से नित्य लगाये दुख को
चाह नहीं कुसुमित उपवन को
पाऊं प्यारे
आओ तुम पर्याप्त हमें है यही हमारा चिर उजड़ा वन ॥३॥

देखो सत्य कहो क्या उर में
छिपी लालसा कोई इसमें ?
हां तल्लीन बना यह तुममें
व्यथित हो रहा
उद्वेलित हो उठे, उगो तो पूर्णचन्द्र! प्रियवर! हो शुभ दिन ॥४॥
ज्ञान धेनु फिर यह सन्ध्या में
अपना वत्स प्राप्त कर मन में
हर्षित होगी, जगते रस में
मग्न करेगी
न्योछावर जिस पर है उसका सारा जीवन सारा तन मन ॥५॥
नहीं नहीं ओ श्याम हमारे
प्यारे यशुदा-नन्द-दुलारे
आओ कब तक भला पुकारें
सहा न जाता
अब न सहूंगा आओ अथवा त्याग रहा हूं लो यह जीवन ॥६॥

(४८)

॥ विधाता से ॥

विधाता एक विनय भी मेरी।
स्वीकृत हो होगी यह अतिशय मुझ पर करुणा तेरी॥
देना हमें कर्म का फल ही
हम न चाहते वैसे कुछ भी
भय न हमें है कुछ दुख का भी
जैसे कर्म हमारे होंगे जन्म वही तुम तो दोगे ही
देना जो इच्छा हो तेरी॥१॥
अथवा सुख न मुझे तुम देना
केवल बस दुख ही दुख देना
चाहे नीच योनि ही देना
पशु पक्षी कीड़े तरु तृण रज या पाहन कर देना
लगाना भले तनिक मत देरी॥२॥
मेरे पुण्य कर्म लेकर के
नर नृप अथवा सुर ही कर के
तड़पाना मत करुणाकर के
मत देना मुझको जो वैभव हैं सब जो केवल पल भर के
चाहना इनकी नहीं हमारी॥३॥

उसी पुण्य से वृन्दावन में
देना जन्म कहीं तृण द्रुम में
पशु पक्षी अथवा वाहन में
क्या कर दोगे कालिन्दी के नव विकसित कमलों में?
करोगे धन्य भाग्य यह मेरी?॥४॥

इतना ही कर दो तुम हमको
किसी बहाने उस प्रियतम को
देखूं, और न चिन्ता मुझको
देना फिर चाहे दुख जितने भय न हमें है तनिक नरक का
इतनी बस करुणा हो तेरी ॥५॥

(४६)

॥ चित्रकार से ॥

चित्रकार तुम अंकित कर दो ।
मेरा व्याकुल पीड़ित अंतर इस पट पर ला रख दो ॥
मूक वेदना, नव अभिलाषा
प्रिय पाने की शत शत आशा
मेरी आहों से आच्छादित
दुख से पूरित
धक धक करती विरहानल भी प्रगट उसी में कर दो ॥१॥
बार बार अपमानित होकर
शुष्क हुआ जो आकुल बनकर
घोर निराशा की गोदी में
हाँ यह उसमें
कोमल भावमयी इच्छाओं का भी शुभ रंग भर दो ॥२॥
कहीं विरह से व्याकुल होता,
कहीं भावना कोमल करता
कहीं आह आशा भी किंचित
फिर भी वंचित
कहीं निराशा से, यह इसका विषम चित्र तुम रच दो ॥३॥

~~इतनी और दया दिखलाओ~~
कहीं उछलता अति आतुर हो
कहीं विरह में ही व्याकुल हो
निशि दिन है यह जलता रहता
आहें भरता
इस मेरे तुम अश्रु विन्दु से उसको अंकित कर ॥४॥
इतनी और दया दिखलाओ
जल्दी भाई इसे बनाओ
मैं न वहां तक जा पाता हूं
तन कहता हूं
रचकर अन्तर चित्र हमारा प्रिय चरणों में रख दो ।५॥

(५०)

॥ विरहाकुल ॥

कोई इतनी दया दिखाओ।
मुझ पीड़ा से अति व्याकुल को भाई! सुनो बचाओ ॥
फट जायेगा मेरा अन्तर
सह न सकेगा यह दुख कातर
देखो देर करो मत पल भर
मेरे प्यारे से अब सत्वर कोई मुझे मिलाओ ॥१॥
जब तक वहां न पहुंचूंगा मैं
तब तक यों ही तड़पूंगा मैं
यदि यह करो बचूं तब तक मैं
अमृत पूर्ण प्यारे के गुणगण कोई तब तक गाओ ॥२॥
आह अभागा देख न पाया
अरे मिटी जाती है काया
वह न अभी तक निष्ठुर आया
मेरी विनय, व्यथा यह मेरी कोई उसे सुनाओ ॥३॥
जाता हूं अब वह न मिलेगा
भला कौन तक क्यों आयेगा
क्या इतना ही तुम से होगा

मेरे अश्रु बिन्दु ही कोई अब उस तक पहुंचा ओ ॥४॥
बड़ी कृपा होगी यह मुझपर,
चिर कृतज्ञ होऊंगा, तिसपर
इस मित वह पाओगे सुन्दर
मैं तो चला भस्म मम कोई ले उस तक पहुंचा ओ ॥५॥
दीन भला बदला क्या दूंगा
जहां रहूंगा गुण गाऊंगा
यह उपकार न मैं भूलूंगा
कोई किसी भांति भी मुझको प्रिय पद तक पहुंचा ओ ॥६॥

(५१)

॥ हृदय के तार ॥

छेड़ता कौन हृदय के तार ?
निकल रही पीड़ा बन जिससे यह नीरव झंकार ॥
इस टूटी तन्त्री को लेकर
कौन हठी जो कष्ट उठाकर
कोमल कर से इसे लगाकर
प्रगट कर रहा यह अन्तर में करुणामय गुंजार ॥१॥
जीर्ण शीर्ण तारों से सुन्दर
स्वर लहरी कैसे होती, पर
अनजाने या जान बूझकर
कौन निकाल रहा है इससे यह अति आर्त पुकार ! ॥२॥
होता मथित विकल अन्तर है
कौन विवश कर खींच रहा है ?
यह किसका यों आकर्षण है ?
कौन हमारी दुख-दावानल का करता उद्धार ?॥ ३॥
क्या तेरी ही अरे चपलता ?
क्यों प्यारे ! इतनी निष्ठुरता !
देखो तो कितना दुख पाता

क्या तू ही यह सब करता है मेरे नन्दकुमार? ॥४॥
ठहर छोड़ दे छेड़ न इसको,
जगा नहीं सोई पीड़ा को
रोक तनिक इस आकर्षण को
क्या इतना कर देगा? प्यारे! केशव प्राणाधार! ॥५॥
नहीं नहीं झंकृत कर इसको,
बढ़ा वेदना आकर्षण को,
क्षुब्ध बना दे इस अन्तर को,
पर न छिपे रहना यह अच्छा, होकर प्रगट उदार ॥६॥
वही क्षुब्ध अन्तर नयनों से
निकल रहा है, क्या तू इनसे
धो लेगा पद? होगा जिससे
शान्त, सफल, आनन्द मग्न यह पाकर तेरा प्यार ॥७॥
इतना कोमल स्वर निकलेगा,
सारा त्रिभुवन मुग्ध बनेगा,
क्या तू इतनी दया करेगा?
बैठ प्रगट नयनों के सम्मुख छेड़ हृदय के तार ॥८॥

(५२)

" रोओ "

रोओ :-

अपने पावन दृगजल से प्रिय के चरणाम्बुज धोओ ॥

कर दूर निखिल संताप पाप,
उद्यत आने को वही आप,
देरी बस इतनी एक बार,
अन्तस्तल से सच्ची पुकार
कर उठो समय मत खोओ ॥१॥

जाने कितने ही संस्कार,
संचित जन्मान्तर से अपार,
कर दिये बन्द हैं हृदय-द्वार,
पर हो भूलों से रहे हार,
जाग्रत हो; अब मत सोओ ॥२॥

प्रिय चरण कमल का पा पराग,
जो मूर्तिमान अनुराग राग,
हो जाओगे तुम धन्य धन्य,
ब्रह्माण्ड अखिल में शुचि अनन्य,
तज दो चिन्ताओं का [illegible] ॥३॥

हैं वे करुणा-मय दया[illegible],
हो द्रवित उठेंगे [illegible] ललाम
ढरते नयनों से [illegible] बिन्दु,
निश्चय आयेंगे [illegible] किन्तु,
इतना तो तत्पर हो ओ ॥४॥

चाहे हों जितने शुष्क [illegible],
निर्गन्ध असुन्दर [illegible],
फिर भी तो हैं ये प्रेम पुष्प,
ले लेंगे वे त्रैलोक्य भूप.
तू निज अंजलि सज तो ओ ॥५॥

(५३)

॥ बोलो ॥

बोलो ?
आश्रय-हीन-दीन क्यों भूले, भला तनिक सुधि तो लो ॥

तुम हो दुखियों के प्राण प्राण,
करते हो दुख में तुम्हीं त्राण,
मत बनो निठुर करुणा-निधान,
अब मत रस में विष घोलो ॥१॥

यह विरह-वेदना अति कराल,
जलती अन्तर में ज्वाल-माल,
बनी प्रेमा-मृत इसी काल,
घनश्याम बचा मुझको लो ॥२॥

भटक रहा हूं भवागार में,
कण्टक-मय इस पथ अपार में
और रखो मत अन्धकार में,
प्रिय अन्तर्पट खोलो ॥३॥

मौन तोड़ दो, आओ आओ,
गाओ पुनः अमृत बर्षाओ,
अश्रु गिराते इन्हें मनाओ,

पर इनसे पद धोलो ॥४॥

पुनः प्रकृति नव साज सजेगी,
शुचि हृत्-तन्त्री राग बजेगी,
गा तव गुण नव सृष्टि रचेगी,
तनिक उसे लख तो लो ॥५॥

नव जाग्रत का राग मनोहर,
बजा मुरलिका स्वर में सुन्दर,
गीता का वह ज्ञान सुखाकर,
घोषित करदो बोलो ॥६॥

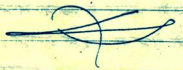

(५४)

॥ कहाँ ढूंढूं ॥

ढूंढूं कहां कहां पाऊंगा?
बुद्धि-रहित हूं आते निर्बल हूं कैसे पता लगा लाऊंगा ॥

ये रवि-शशि ये नभ के तारे
सभी ढूंढते तुमको प्यारे
निशि दिन दौड़ रहे बेचारे
फिर किसके समीप जाऊंगा ॥१॥

संध्या सुन्दर वेश बनाये
ऊषा मंगल-साज-सजाये
बाट देखती हैं लव लाये
दीन हीन मैं क्या लाऊंगा ॥२॥

यद्यपि है अनन्त वह सागर
तव वियोग में पर नट नागर
क्रन्दन करता जलता अन्तर
तुच्छ हीन मैं क्या पाऊंगा ! ॥३॥

सभी प्रकृति व्याकुल चंचल हो
तुम्हे ढूंढने को गति-युत हो
[redacted]

बिना किये विश्राम पथिक हो
दौड़ रही संग क्या जाऊंगा ॥४॥
किन्तु पता न तनिक भी पाये,
ज्यों के त्यों हैं ध्यान लगाये
मन मोहन यदि तू ही जाय
धन्य धन्य तो हो जाऊंगा ॥५॥
ऋषि-मुनि-सुर [illegible] जिसे न पाते,
मैं क्या, वे भी हैं [illegible] जाते
अतः प्रभो तुम दया दिखाते
तभी तुम्हें अपना पाऊंगा

(५५)

"क्या दूं!"

क्या दूं! ओ प्यारे हृदयेश!
लिये बिना पर तुमने [illegible] नहीं कभी नरेश ॥
जूठी बेरें या कुछ तन्दुल
केले के छिलके ही मिलजुल
अथवा वस्त्र मात्र दो अंगुल
कुछ भी हो
होवे प्रेम सहित पर कुछ यह रक्खे ध्यान हमेश ॥१॥
दयाधाम करुणासागर हो
पर यह हठ क्यों नटनागर! हो?
तुम दोगे सर्वस्व सदय हो
पहले हमसे
तुच्छ पत्र, जल, पुष्प, प्रेम के लेकर ही भुवनेश ॥२॥
किन्तु प्रभो! मेरे उपवन ने
देखा नहीं कभी जीवन में
सुखवसंत, बसता पतझड़ में
अतः बता ओ
पाऊं कहां? कहां से लाऊं! कुछ भी मैं अखिलेश ॥३॥

सार-हीन निर्गन्ध कमल की
यह केवल अब जड़ है बाकी
आम्र-मौर की सूखी शाखी
भला कहां रस
जिससे तुमको तुष्ट करे मधुकर मधु-दे आत्मेश! ॥५॥
जाओ प्रियवर निज हठ भूल
तत्व-हीन या जो वन-फूल
स्वीकृत कर दे दो यह कूल
जहां प्रेम की
नित प्रति होती सतत प्रवाहित भग्न ताप दुख-लोश ॥६॥
वहीं उसी सरिता के तट पर
अश्रु-विन्दु की अंजलि लेकर
धो दूंगा तेरे पद सुन्दर
अपना लेना
जब रख दूंगा श्री चरणों पर हृदय-कमल हृदयेश ॥७॥

(५८)

॥ हमारे श्याम ॥

हमारे श्याम हमारे श्याम ।
मन मोहन त्रिभुवन अभिराम ॥
तेरी हास्य किरण से तारे,
तव आनन सा शशि यह प्यारे ।
तेरी स्मृति सी सरित किनारे,
बैठ देखता शोभाधाम ॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥१॥

आशा सी उठती लहरे हैं,
किन्तु निराशा भ्रमर पास है,
कोकिल-ध्वनि, स्वर-स्मरण कराती,
है मुरली का ललित ललाम ॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥२॥

करते जल क्रीड़ा शशि तारे,
मसल रहे वे हृदय हमारे ।
निष्ठुर थे भी तुमसे सारे,
इनमें छिप बैठा घनश्याम ॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥३॥

वह लतिका मुझको हंसती है,
कुमोदनी संग रोती है।
रोता कमल एक साथी है,
आओ प्रिय रवि! सुन्दर श्याम!॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥७॥

कहो वायु तुम क्या कहते हो,
या उस झष को देख रहे हो।
जो आस्माँ पर दौड़ रहा है,
नीर पतित लख बिन्दु ललाम ॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥८॥

यह क्रीड़ा तो कब से ही है,
बात तुम्हें वह भी कहनी है।
कहो कहो क्या कहीं सुनी है?
आता मेरा प्रिय अभिराम ॥
हमारे श्याम हमारे श्याम ॥९॥

(५७)

॥ हँसदो ॥

कुसुम कलिका से प्रियतम हँस दो।
नयन ओस कण गिरा रहे हैं सफल इन्हें भी करदो ॥
कब से भ्रमर पिपासु बने हैं,
ये बुलबुल बिहंग आतुर हैं
तुम बिन ये सूखे से तरु हैं
यह मधु ऋतु भी
बाट देखता खड़ा असीकी इसकी गोदी भरदो ॥१॥
भला न नित का पतझड़ प्यारे
जगें कभी तो भाग्य हमारे
लता गुल्म सूखे से सारे
नग्न रहें ये
कब तक, आओ देखो इनको दो इनको किसलय दो ॥२॥
चपल तितलियों युत लतिकायें
जब तक तेरा हास्य न पायें
ये क्योंकर मन मुग्ध बनायें
शव सी सब हैं
दया-दृष्टि फेरो सरसाओ मधु दो नव जीवन दो ॥३॥

हो पूरित सुगन्धं से उपवन
गावें चहकें ये पक्षीगण
गूंजें मत्त बने सब अलिगण
पदतल चूमें
झूम झूम कोमल कलियां बस इतना इतना ही करदो ॥४॥

अश्रु ओस से तुम्हें सजाऊं
घूमूं उस उपवन में गाऊं
हां हां पद-पराग नित पाऊं
क्या न हँसोगे
नहीं नहीं ऐसी यह हठ क्यों हँसदो प्यारे हँसदो ॥५॥

(५८)

॥ किसका दोष ॥

कहो दोष किसका मधुसूदन।
मेरा या तेरा सच सच कह प्यारे नटखट कालिय-मर्दन! ॥
तेरा मैं तेरा तेरा हूं
था, अब भी तो वैसा ही हूं
क्या तू मेरा
नहीं, भला कैसे यह मानूं अरे बता तो मम जीवन-धन॥१॥
फिर भी मैं दोषी पापी हूं
दुख पाता हूं परितापी हूं
दोष देख कर
छोड़ा क्योंकर क्यों न सुधारा, हुये दूर क्यों? मेरे भगवन!॥२॥
दिया स्वभाव यही तो मुझको
बुरा लगा फिर क्यों यह तुमको
आज नई क्यों
कभी न देखे दोष किसी के रहे सदा से पतित-उधारन ॥३॥
मैं तुमको सच है भूला था
पर वह तो स्वभाव मेरा था
तुम भी भूले

मुझे इसीसे, मैं देख पाऊं यही उचित क्या ! त्रिभुवन-पावन ॥४॥

अब भी मैं रोऊं तुम देखो

आओ, यों न पाप को देखो

देखो आँसू

ढुलक ढुलक कर सींच रहे पथ इन्हें सफल कर ओ मन मोहन ॥५॥

(५८)

॥ कभी सुनोगे ॥

कभी सुनोगे यह निश्चित है
यद्यपि आज दीन यह [illegible] क! तुमसे वंचित है ॥
यद्यपि यह कठोर दुखदाई
सत्य किन्तु भी तो यह भाई
तुमसे आश विफल हो आई
कौन सुनेगा
अरे कौन विश्वास करेगा केशव निष्ठुर चित है ॥१॥
आज नहीं, पर सोचो उस दिन
जब जीवन का हो अन्तिम क्षण
यों ही रोते रोते यह तन
नाम तुम्हारा
लेता छूट रहा होगा तो कहो कौन होगी तब गति है ॥२॥
भला विरद तब कहां रहेगा
एक मात्र यह करना होगा
ध्यान न तब अपना भी होगा
दौड़ोगे तुम
अतः आज ही आ जाओ बस इसमें ही दोनो का हित है ॥३॥

क्या आनन्द सताने में है?
बाधा क्या आने में ही है?
आओ तुम यह ही मन में है
आओगे भी
किन्तु सताकर ही आओगे यही सही यदि ऐसा ही है ॥४॥
रोऊंगा तब तक रोऊंगा
जब तक तुम्हें न पाजाऊंगा
लाख कहे पर यह न सुनूंगा
चाहे कोई
तुम न मिलोगे; घोर असम्भव, आओगे निश्चित निश्चित है ॥५॥

(६०)

॥ किसे कहूं ॥

किसे कहूं या किस तक जाऊं ?
मेरी भीषण यह दुख-गाथा कौन सुनेगा किसे सुनाऊं ? ॥
सब तो सुख के साथी जग में
सब की घृणा सदा दीनों में
स्वार्थ भरा सब के अंतर में
यदि मैं कहूं विनोद बहुत से होंगे सुनने वाले
दुख-गाथा को किसको पाऊं ॥१॥
कुसुम-वृक्ष अब कुसुम रहित है,
शरद-गगन का निर्जल-घन है
शशि-हीना यह अमा-रात्रि है
मधुकर, चातक, चक्रवाक क्यों भला निकट आवेंगे,
क्योंकर मैं उनको भाऊं ॥२॥
किन्तु सुना तुम दीनबन्धु हो
हैं भाई ! क्या तुम भाई हो !
कहो कहो क्यों अब तक चुप हो,
तो फिर इन सबकी क्या चिन्ता, दूर रहें ये छोड़े सारे,
मैं भी अब आनन्द मनाऊं ॥३॥

हैं ये स्वार्थी स्वार्थ न मुझसे
अब होता तो तजे दूर से
दूर दूर मैं भी अब इनसे
इन्हें प्रणाम न इधर पधारें, अब आओ तुम प्यारे.
तेरे ही अब गुण गण गाऊं ॥४॥

ओ बसंत! दे कुसुम ललाम
मिला मिला ले ओ घनश्याम!
निष्कलंक शशि शोभाधाम!
प्रगटित हो तू जीवन नभ में दीन बन्धु हे भाई
मैं सुख की दुन्दुभी बजाऊं ॥५॥

(६१)

॥ क्या वह आया ! ॥

क्या वह आया ?
क्या मुझको सनाथ करने को प्रिय मोहन [illegible] आया ? ।
क्यों ये पत्ते खटक रहे हैं ?
क्या इन पर वे चरन पड़े हैं ?
हैं क्या यह प्यारे की पद-ध्वनि पड़ती अहो सुनाई ?
क्या सचमुच यह मुरली की ध्वनि है उसकी ही आई ?
हां हो वह अब आता ही है
कहीं निकट ही में गाता है
वह देखो ! प्राची में पड़ती अरुण चरण की छाया ।
क्या वह आया ? ॥१॥

क्या वह आया ?
या ये सब केवल बस मेरी हैं आशा की माया ? ॥
कहो काग क्या वह आता है ?
उड़ो उड़ो मन उकताता है ।
ओ चातक अब हर्ष मनाओ क्या पी पी का काम ?
लो आता पी अरे तुम्हारा मेरा प्रिय घनश्याम ।
अरे मृगी उत्फुल्ल दृग तेरे,

क्या देखा प्यारे को मेरे ?
कहो कहां वह नटनागर है ? कहाँ तुम्हें दिखलाया ? ॥
क्या वह आया ? ॥ २ ॥

क्या वह आया ?
सूख हुई कंकाल विरह में जिसके मेरी काया ।
दूर हटाता अन्धकार को
फैलाता अपने प्रकाश को ।
भूषित करता प्राची आता क्या मम प्राणाधार ?
क्या उसके ही स्वागत को नभ लिये रत्न-भंडार ?
तो उठ मेरे हृदय प्रस्तुत हो
शोक कहां अब मोद-युक्त हो ।
ले यह अपनी अश्रु-माल जो उसके अर्थ बनाया ॥
क्या वह आया ? ॥ ३ ॥

क्या वह आया ?
अरे नहीं, तो क्या मन ने था झूठा जाल सजाया ।
पर यह भू तो मुदित दिखाती
मानो उसकी पद-रज पाती ।
इतनी वेग युक्त यह सरिता क्या न उसी की ओर ?
जाती है उन्मत्त बनी सी पाने को चित चोर ।

बहुत दीन हूं दया दिखाओ
कोई उसका पता बताओ।
अब तक उसने कभी किसी को कहीं नहीं ठुकराया॥
क्या वह आया? ॥४॥

(६२)

॥ हमारी आशा ॥

होगी आशा पूर्ण हमारी ।
देखेंगी प्यासी ये आंखें मोहन मूर्ति तुम्हारी ॥
मूक वेदना स्वर लहरी में,
अपनी हृत तन्त्री के स्वर में
माधव तेरे पद-पंकज में
गाँऊंगा मैं
गत [illegible]ना सा कीर्ति तुम्हारी भव-भय-नाशन हारी ॥१॥
मृदुल लहर में नव पंकज सा
सरिता-जल-गत चंचल रवि सा
कुमुद दलों पर चन्द्र किरण सा
नाच उठूंगा
तेरे सम्मुख मोद मग्न हो भूल जगत सुधि सारी ॥२॥
चन्द्रकान्त के प्रिय निशिकर-कर !
सुभग शालि के जीवन जलधर !
द्रवित बनोगे तब तुम सत्वर
कोमल कर से
उठा मुझे अपनाओगे बस करुणा-सिन्धु मुरारी ! ॥ ३॥

एक बार रवि बिन पंकज सा
प्यारे जल बिन दीन मीन सा
मणि से हीन विकल फणधर सा
तड़प उठूं बस
उस क्षण में ही आ जाओगे अखिल सुमंगलकारी ! ॥४॥
यही तड़प व्याकुलता दे दो,
इतना ही बस इतना कर दो
और न कुछ मन में इच्छा हो
तुम्हें पुकारूं
अश्रु बहाऊं तव वियोग में यह दे दो गिरिधारी ॥५॥

(८३)

॥ कब तक ?॥

आओगे प्यारे तुम कब तक ?
इसी प्रकार भला बर्षायें नेत्र-जलद जलधारा कब तक ?॥
भीषण अग्नि-वृष्टि रवि करता
शोषक उष्ण वायु भी चलता
सारे रस को है यह हरता
क्षिति तल तप्त तवे सा जलता चैन न कोई पाता
रहें विकल ये प्राणी कब तक ? ॥१॥
इन कोमल कमलों के ऊपर
ओ विधि ! वज्र-हृदय अति निष्ठुर
अरे आह हिमवर्षा क्योंकर
देखो सूख गये से सारे, रोता है इनके दुख से सर
रहें भला ये शव से कब तक ?॥२॥
देखो तो कुररी यह रोती
चक्रवाकियां भी संग देतीं
दया न क्या इन पर कुछ आती ?
तव वियोग में ये है निशिभर रोतीं निद्रा इन्हें न आती
रोयें ये रोयें फिर कब तक ? ॥३॥

सकल ताप हर्ता पावस तू
हिमनाशक मधुऋतु प्यारा तू
कुररी चक्रवाकियों का तू
दुख-हर्ता प्यारा दिनकर है, मेरा सभी सहारा है तू
पायेंगे हम तुझको कबतक ! ॥३॥

अब न सहा जाता यह दुख है
इससे तो मरने में सुख है
यह जीवन का अन्तिम क्षण है
जाने तुम आओगे अब ? यहां मुझे पल भी युग है
भला सहन कर सकता कबतक ? ॥४॥

आओ अब भी तो अपनालो
कर कमलों से मुझे उठालो
अथवा लो जीवन ही लेलो
छोड़ो मत यों ओ जीवन-धन, अपना मुझको आज बनालो
रोऊँ यों मैं रोऊँ कबतक ! ॥५॥

(६४)

॥ प्रश्न ॥

प्यारे कब तक भटकाओगे ?
कब मेरे अन्तर में अपनी मूर्ति मनोहर दिखलाओगे ।
देखो मैं कितना पीड़ित हूँ,
दीन अनाथ मलिन अशरण हूँ
अहो शरण्य! तुम्हारा ही हूँ
दीनबन्धु ! कब हाथ पकड़कर मुझे प्रेम से अपनाओगे ॥प्यारे॥
बारबार माया यह तेरी.
करती रहती दुर्गति मेरी
कब तक नाथ! करोगे देरी ?
कब इसके दुखमय चक्कर से मुझे छुड़ाने तुम आओगे ? ॥प्यारे॥
कभी काम के वश में होता,
कभी लोभ में खाता गोता,
कभी क्रोध से अन्धा होता,
कब इस भूल भुलैया से प्रिय! मुझे मार्ग पर ले आओगे ?
॥३॥
कभी कभी जब होकर खाता,
तुम्हें भूलने का फल पाता,
नाम तुम्हारा लेतब रोता,

कबतक आर्त पुकार हमारी स्थिर दृढ़ नित्य बना जाओगे ? ॥४॥

दुख में तो तुम से हूं रोता,
फिर लोभादिक में हूं पड़ता,
भूल पुनः तुमको हूं जाता,
कब तक इन भूलों में रखकर छला ! मुझे दुख पहुंचाओगे ? ॥५॥

भला प्रलोभन क्यों देते हो ?
मुझ अशक्त को क्यों छलते हो ?
ठहरो - क्यों प्यारे ! छिपते हो ?
और छिपो मत - दया दिखाओ - आह प्राण-धन ! कब आओगे ? ॥६॥

(५५)

॥ मेरा कौन ? ॥

जग में मेरा कौन बताओ ?
जिस पर छोड़ मुझे करुणामय पद से ... हटाओ ॥
माता पिता सुहृद भ्राता सब
गुरु सुत बांधव संबन्धी सब
विद्या-बल-पौरुष जन धन सब
जो कुछ भी है
नाथ ! तुम्हीं सब कुछ मेरे हो, आह ! न मुझे भुलाओ ॥१॥
बड़ी दया की छीन लिया सब
छोड़ भला सकता इनको कब
पर सब लेकर बने तुम्हीं सब
क्यों करुणामय
तब भी मुझ अनाथ अशरण को स्वयं न आ अपनाओ ॥२॥
काम-क्रोध-मद अन्तर में हैं
भरे हुये कैसे मानूं मैं
अपना लिया मुझे तुमने है
दया करो अब
बहुत दिनों से भटक रहा हूं और न अब भटकाओ ॥३॥

पूजा ध्यान धर्म क्या जानूं
अशरण शरण तुम्हें मैं मानूं
हूं अशरण अनाथ यह जानूं.
अपना ओगे
बस इतने से दीनबन्धु तुम आओ, मत ठुकराओ ॥४॥
आह मुझे भूले तुम प्यारे
किसके छोड़ा मुझे सहारे
तड़प रहे ये प्राण बिचारे
निकल रहे अब
जो इच्छा हो करलो, मारो अथवा मुझे बचाओ

(५५)

॥ कहां गये ? ॥

कहां गये ? ओ प्राण हमारे !
कौन भला अब किसे पुकारे ॥

ढूंढ़ रहे तुमको प्यारे, आओ मेरे श्याम!
आओ आओ मुरलि बजाओ गाओ नव घनश्याम !
तेरा पता लगाता कब से इधर उधर हूं शोभाधाम !
पर तुम जाने कहां पधारे ।
कहां गये ? ओ प्राण हमारे ! ॥१॥

क्रीड़ा करते कालिन्दी की लखकर लोल लहर में,
शत शत चपल निशाकर गण को सोच रहा था मनमें
मेरा प्यारा कृष्णचन्द्र भी खेल रहा क्या इनमें ।
लेकिन थे न वहां तुम प्यारे !
कहाँ गये ? ओ प्राण हमारे ! ॥२॥

देखा उस नन्हें से शिशु के जब कपोल पर पड़ती,
प्रभा की सुन्दरतर शोभा जो सबका मन हरती ।
सोचा क्या तेरी ही सुषमा है इसमें लख पड़ती,
मेरे प्यारे नन्द दुलारे !
कहाँ गये ! ओ प्राण हमारे !॥ ३॥

इस नीले नभ पर जो निशि में हैं बिखरे ये तारे,
आह विमोहित करते मनको क्या ये तुमसे न्यारे?
मुझे तुम्हारी हास्य-किरण से ही लगते हैं सारे
मुग्ध हो लख-कर कुछ क्षण वारे।
कहां गये? ओ प्राण हमारे ॥४॥
तू न मिला मुझको इन सब में खोज खोज कर हारा,
और बताओ कहां लगाऊं प्यारे! पता तुम्हारा?
निष्ठुर अब न सहा जाता है जाता प्राण हमारा
अरे अब भी तो आओ प्यारे!
कहां गये! ओ प्राण हमारे ॥५॥

(५१)

॥ कब ॥

होगा प्रिय! पावन वह क्षण कब!
धोऊंगा अपने आंसू से तेरे कोमल चरण-कमल जब!!
रोमांचित पुलकित तन होगा,
गद्‌गद्‌ कंठ भग्न स्वर होगा
प्रियतम में ही
सुधि बुधि खोकर मन लय होगा
नाचूंगा, भू पर लोटूंगा गाऊंगा उन्मत्त बना कब ? ॥१॥
नेत्रों में तव रूप माधुरी
कर्णों में मुरली-स्वर लहरी
जिह्वा पर हों
पुण्य नाम तव छाया गहरी
होगी मेरे हृदयस्थल पर होगा तूही मम आश्रय कब ॥२॥
लज्जा भय अभिमान न होगा
लोगों का कुछ ध्यान न होगा
कुछ न रहेगा
केवल मैं होऊं तू होगा
वह एकान्त शान्त चिर सुखमय होवेगा मेरा जीवन कब ॥३॥

तुम आंसू अपने ही कर से
पीताम्बर के ललित छोर से
जब पोंछोगे
मैं पद पोंछूंगा पलकों से
वह दिन इस जीवन का जीवन क्या आयेगा? आयेगा कब?॥४॥
कब तक करूं प्रतीक्षा उसकी
शक्ति नहीं इस मम अंतर की
फट जावेगा
अब यदि पल भर भी देरी की
आओ मेरे प्यारे मोहन अभी नहीं तो आओगे कब!॥५॥

५२,

॥ तुम्हारे पथ में ॥

अब तो तेरे पथ में आया।
पथिक बना जब अगम मार्ग का तब चिन्ता का माया ॥
सह लूंगा सब जो आवेगा,
जितना कष्ट देह पावेगा
लौट चलूं यह कैसे होगा
अब तक लौटा कौन बताओ तो मायापति !
जो इस पथ में आया ॥१॥
छोड़े धर्म कर्म सब तुझ पर
जग हँसता हँसने दो मुझ पर
क्या चिन्ता क्या आशा इस पर
चाहे जो कुछ कहें हँसे वह पर मैंने तो
तेरा पथ अपनाया ॥२॥
हां मैं जाँति पाँति से च्युत हूं,
तो न किसी का कुछ लेता हूं
उनके निकट कहां जाता हूं
हूं आचार भ्रष्ट तो छोड़ें दूर रहें वे
छूवें न मेरी छाया ॥३॥

वे कहते हैं पागल मुझको,
सच तो है दोष न इनको,
वह पागल परवाह न उसको,
जिसने तेरे मधुमय प्याले से हाला की
एक बूंद भी पाया ॥४॥

धन बांधव तन मन यह अन्तर
किये सभी तुझ पर न्योछावर
अब कोई चिन्ता हो क्योंकर
हां अभिलाषा हो यह पूरी प्रिय मैं पाऊं
चरण कमल की छाया ॥५॥

(५९)

॥कहाँ छिपे हो!॥

कहां छिपे हो? प्राण हमारे!
खोज लगाते कब से तेरी दीन हीन बेचारे ॥
निशि में महाघोर जंगल में
तनिक मार्ग या पत्रान्तर में
तरु-तल, सघन कुजं, झाड़ी में
पूछ रहीं कोमल शशि किरणे झांक झांक कर
क्या तुम यहां पधारे? ॥१॥
क्या निशिकर! तुम भी व्याकुल हो?
उसको पाने को आकुल हो?
हाँ तब ही तो यों चंचल हो
होते हो घन-अवली-भीतर फिर फिर बाहर
तुम आशा के मारे ॥२॥
चक्रवाक! क्या नींद न आती?
उसकी चिन्ता तुम्हें सताती?
यह कुररी भी दुखी दिखाती
है रोती निशिभर जागत हो मुझ जैसी ही
ले ले नाम तुम्हारा ॥३॥

दया करो कोमल कमलों पर
वे तो केवल तुम पर निर्भर
देखो तो सब शव से बनकर
बन्द पड़े हैं सर में दिनकर! तुम बिन सारे
आओ अब भी प्यारे ॥४॥

हिम-मंडित उन्नत शिखरों में
अति उतंग जलनिधि लहरों में
अथवा नील-क्षितिज-पर्दे में
कहाँ छिपे हो? सब व्याकुल हैं अब तो आओ
प्यारे नन्द-दुलारे! ॥५॥

(१०)

॥ पुकारो ॥

पुकारो।

एक बार सच्चे अन्तर से पाहि प्रभो उच्चारो ॥

सारे जग की आशा तजकर
तन मन धन से उसका होकर
आर्त अकिंचन व्याकुल होकर
कहो सही तो

म विनाशन! श्रीगरुड़ासन! अशरण-शरण! उबारो! ॥१॥

वेद-अध्ययन, दान, कर्म का
त्याग भरोसा योग यज्ञ का
तीर्थ मन्त्र देवों पितरों का
पूर्ण रीति से

त्रिभुवन-पति के पद-पल्लव पर सब कुछ अपना वारो ॥२॥

ठुकरादो दूजे धर्मों को
उरो न इस माया मय जग को
करदो अर्पण तुम अपने को
मन मोहन को

एक मात्र उसको ही जानो केवल उसे पुकारो ॥३॥

गद्‌गद्‌ कंठ अश्रु दृग भरकर
पुलकित तन से निर्भय होकर
रोम रोम से, तन्मय होकर
भजन करो कुछ
पाप ताप सब जल जावेंगे प्रिय माधव उच्चारो ॥४॥
हां वह आयेगा उस क्षण में
व्याकुल प्राण तड़प कर तन में
निकला चाहें घोर विरह में
तभी तभी हां
मुरली अधर धरे आयेगा वह श्री नन्द दुलारो ॥५॥

(११)

॥ नट ॥

ओ नट! अब हारा मैं तुमसे।
नाना वेश बना कर छिपना और न अच्छा आई हमसे ॥
कुसुम कोमल-मंजु सुगंध में
मधुर कोकिला के कल सोर में
भ्रमर गुंजन सिन्धु हिलोर में
सौन्दर्य पूर्ण तेरा ही कहता हूं मैं इससे ॥१॥
ललित बालक की किलकारियां
जननि की उर से बलिहारियां
परम-प्रेम-मयी शुचि थपकियाँ
हैं इनमें आई बतला ओ तुम्हें छोड़कर किससे ॥२॥
धवलता गिरि शृंग उतंग की
रजत सी हिम-भूषित अंग की
अमृत पूरित चन्द्र सु बिम्ब की
इतनी सुन्दर मोहक झांकी है क्योंकर के किससे ॥३॥
प्रखर ज्योति दिवाकर तिग्म हो
तम विनाशक हर्षित कर मही
प्रगट होकर भूषित यह मही

शोभित होता तेज तुम्हारा पाकर यह सब कहते स्वर से ॥४॥
हम नहीं पर यों सुख देखते
यह परोक्षन हैं हम चाहते
विकल अंतर है इसके लिये
आओ प्रगट पधारो गाओ देखे तुमको इन नयनों से ॥५॥
सच सही तुम दीन-सुअश्रु में
दुखित की दुख-पूरित आह में
पर लगी यह आश सदा हमें,
सुनें श्रवण से मुरली की ध्वनि लें तव पद-रज सिर से ॥६॥

(९२.)

॥ यह तन ॥

हे प्यारे! तेरा ही यह तन।
तेरी इच्छा का यह यन्त्र तुझे समर्पित मेरे मोहन! ॥

चाहे जैसे इसे चलाओ
चाहे जो कुछ कार्य कराओ
चाहे जैसा इसे बनाओ
जो इच्छा हो
चाहे रखो मिटा दो अथवा यह तो है तेरा ही जीवन ॥१॥

धर्म-कर्म जप-तप ये सारे
पाप-पुण्य दुख-सुख सब मेरे
हैं, होवें इच्छा से तेरे
मैं ही तेरा
भला मुझे इनसे क्या मतलब तुम जानो लो यह अपना मन ॥२॥

स्वर्ग-नरक का भय हो क्योंकर
किसके लिये, तुम्हारा होकर
चाहे जहां फेंक दो, जाकर
वहीं रहूंगा
देखा करना, तुम सम्हालना वहीं वहीं अपना प्यारे! धन ॥३॥

मत सम्हालना चिन्ता क्या है
मेरा क्या यह तो तेरा है
हो इतना कहना मेरा है
दया करो अब
लो यह अपना तुम अपनाओ और छुड़ा दो यह अपनापन ॥४॥
पर इतना करदो ओ प्यारे
यही लालसा हृदय हमारे
यह इच्छा का यन्त्र तुम्हारे
मांग रहा है.
दे दो इसको हो प्रिय दे दो अपनी दुर्लभ पद-रज पावन ॥५॥

(९३)

॥ आर्तनाद ॥

आर्तनाद होगा यह कब तक ?
अरे द्रवित होगा ओ निष्ठुर तू जाने ओ नर यह कब तक ॥
हृदय-सिन्धु की चपल तरंगें
ये आशा की निठुर उमंगें
भग्न निराशा से होकरके क्रन्दन करतीं जाने कब से
यों ही और चलेगा कब तक ॥१॥
होकर अलग अहो प्यारे से
कुररी के सँग उसके जैसे
यह चकई व्याकुल रोती है निशि लगती इसको स्याई सी ॥
सुख ऊषा आवेगी कब तक ॥२॥
प्यारे इस कीचड़ में पड़कर
जीवन से ही अहो बिछुड़कर
दीन हीन दुर्दशा ग्रस्त ये देख रही है मृत्यु घड़ी को
यह मछली तड़पेगी कब तक ॥३॥
दया-धाम सब बतलाते हैं
यश निशि दिन सब ही गाते हैं
पर अब की यह निर्दयता क्यों आर्तनाद मेरा सुन करते

प्यारे ! और करोगे कब तक ॥४॥

हठी हृदय यह हठ ठाने है
कैसे भला अरे माने यः
हार गया मैं मना मनाकर पर तड़पेगा यह निश्चित है
तुम्हें न पा लेगा यह जब तक ॥५॥

किन्तु न उसकी अब आशा है
हद वियोग का भी होता है
लो जीवन अब सह न सकूंगा और प्रतीक्षा होगी कब तक
बहुत कर चुका हूं मैं अब तक ॥६॥

(१४)

॥ मत भटकाओ ॥

विधि यों मुझको मत भटकाओ।
किसी प्रकार मुझे प्यारे तक, पहुंचाओ पहुंचाओ ॥

सच हैं पुण्य न ऐसे मेरे
पर उपकार असंख्य तुम्हारे
यह ऋण मम जीवन बहुतेरे
धारण करने से न चुकेगा सदा रहूंगा तव कृतज्ञ मैं
इतनी दया दिखाओ ॥१॥

इन आंखों से उसे दिखादो
या उसका पशु मुझे बनादो
अथवा तुम पक्षी ही करदो
उड़ जाऊं मेरा वह मोहन मुरली जहां बजा गाता हो
इतना मुझे बनाओ ॥२॥

वृक्ष लता तृण अथवा पाहन,
कुछ कर दो पाऊं वृन्दावन,
[redacted] हो कालिन्दी का सीकर कण,
लगूं वायु से मिल सुरवंदित उसके कोमल चरण कमल से
इतना योग जुटाओ ॥३॥

एक झकोरा मलय पवन का
टुकड़ा एक ग्रीष्म के घन का
एक बिन्दु जल कालिन्दी का
करदो पोंछूं स्वेद बिन्दु, छाया दूं, उसकी प्यास मिटाऊं.
उससे मुझे मिलाओ ॥४॥

अच्छा बस इतना ही करदो,
मेरे अश्रु बिन्दु ये लेलो,
वाष्प बना इनको बर्षादो
इनके घन से वहीं जहां हो सुन्दर श्याम हमारा,
इन से उसके पद धोओ ॥५॥

(१५)

प्रेम-प्रलय ॥

प्रेम-प्रलय अब वह प्रियतम हो ।
प्रेम-पयोनिधि ! उमड़ पड़ो अब प्रेम-मगन सारा त्रिभुवन हो ॥
पाप ताप अब बहुत बढ़ा है,
देखो व्याकुल नाथ ! धरा है,
दुष्ट हुआ सब का अन्तर है।
क्षुब्ध हो उठो ओ करुणामय ! अब इन सबका लय हो ॥१॥
नयन-मणि-रवि ज्योतित हो जावें,
काम क्रोध मद लोभ जलावे
दिशि विदिशों में कर फैलावें
तृष्णा मान मोह ममतादिक सब कष्टों का क्षय हो ॥२॥
पीताम्बर से प्रगट कराओ
झंझानिल वह हर ले जाओ
सब का मन यों आज उड़ाओ
तुममें ही मिल जावें सारे सब के सब तन्मय हों ॥३॥
संवर्तक घनश्याम गगन में,
पीताम्बर स्थिर चपला संग में,
मधुर मुरलिका-ध्वनि गर्जन में,

होवे दयादृष्टि वह जिससे त्रिभुवन आप्लावित हो ॥४॥
प्रेम प्रेम ही बस रह जावे
कुछ न पता कोई रह जावे
सब यह पाप ताप मिट जावे
तुम्हीं रहो, हम रहें न कोई, सब तुझ में ही लय हो ॥५॥
दया-दृष्टि तब हो मुझ बट पर
अन्तस्तल के शुभ पत्ते पर
चिर शिशु हँस तू और शयन कर
उस पर तेरी विश्वविमोहन नित्य सुखद क्रीड़ा हो ॥६॥

(१५)

॥ पूजा ॥

यही हमारी पूजा समझो।
दीन भिखारी क्या पायेगा लेलो इसको ही सब समझो ॥

विधि हर पूजित श्रीचरणों में
क्या दूं! शक्ति कहां यह हममें
रखदो उनको रखदो इनमें
मेरी पलक पांवड़े समझो ॥१॥

ये थोड़े से अश्रु-बिन्दु हैं,
प्यारे! ये ही मेरी निधि हैं
धोलो चरणों पर अर्पित हैं
इनको मेरी सुरसरि समझो ॥२॥

कलुषित काम क्रोध से अन्तर
विरह व्यथा प्रज्वलित निरंतर
कैसे कहूं पधारो इस पर
इसको ही शुभ आसन समझो ॥३॥

अब क्या और करूं मैं प्यारे?
पत्र-पुष्प-दल पास न मेरे
आसन भी तो योग्य न तेरे

रुष्ट न हो अपना ही समझो ॥४॥

कलुषित हृदय यही सब कुछ है
आसन, पुष्प, दीप सब ही है
कैसे कहूं समर्पित मन है
अपना ओ त्यागी जो समझो ॥५॥

बलि, उपहार, पुष्प की अंजलि
तव निमित्त मन्त्रों की आहुति
क्या लोगे? लेलो, सब यहां है
इसी दीन भिक्षुक को समझो ॥६॥

क्या यह पूजा स्वीकृत होगी?
आशा क्या मम पूरी होगी?
क्या यह दया तुम्हारी होगी?
प्राण-दान मुझको यह समझो ॥७॥

१५४

(११)

॥ कर्णधार ॥

क्या चिन्ता जब कर्णधार तुम।
उठने दो ये विपुल हिलोरें भला कहो भय खायें क्यों हम॥
जीर्ण शीर्ण नौका यह सच है
सच है अति अगाध यह जल है
तनिक न हममें निज भुज बल है
सच है ये जो साज जुटे हैं जो कुछ करें सभी कुछ हैं हम ॥१॥
भीषण आंधी भी आई है
घोर घटा नभ पर छाई है
बहुत भ्रमर यह कठिनाई है
जान यही पड़ता है मानो खड़े दण्ड ले हैं क्रोधित यम ॥२॥
पर यह भी तो भाई सच है
कर्णधार मेरा माधव है
कहो भला इनका क्या बल है
मुझे डरावें, दुख पहुंचावें, भग्न कर सकें ये नौका मम ॥३॥
हां तुम अभी छिपे हो मुझ से
डरता हूं रोता हूं इससे
पाकर कर्णधार भी तुमसे

भय खाऊँ भटकूं क्या प्यारे ! बोलो बोलो हों निर्भय हम ॥४॥

सच है तुम रक्षक पालक हो
मेरी नौका के चालक हो
चाहे जितनी भी बाधा हों
परन मुझे वे रोक सकेंगी दया तुम्हारी इतनी क्या कम ॥५॥

तोष न है होता पर मन को
रोता पार हुआ ही तब क्या
आशा एक और भिक्षा दो
मुरली लिये दृगों के सम्मुख गाओ, तरी चलाओ प्रियतम ॥६॥

-१५५

(१८)

॥ एकबार ॥

एकबार बस एकबार।
धोने दे पावन युगल चरण हमको भी अपने ओ उदार! ॥

अन्तस्तल की कुछ मृदु कलियाँ,
चिर आशा की संचित लड़ियां,
या जीवन की कोमल घड़ियां,
बन जावें तेरा हृदय हार ॥१॥

आया हूं प्यारे शून्य हाथ,
पतझड़ में तरु के भला साथ
होगा क्या; फिर भी सुनो नाथ
स्वीकृत हो मेरी यह पुकार ॥२॥

यह नर-विहंग-जन-मधुर-गान,
पुष्पों को यह सौन्दर्य दान,
हां विभु तव वैभव महान,
पर मुझ से क्यों रूठे उदार ॥३॥

सजने दो रवि को भव्य साज,
होवें गौरव मय शैल-राज,
धन धाम सुयश का कौन काज,

मुझपर हो तेरा तनिक प्यार ॥४॥

बांकी झांकी की एक झलक,
कुछ क्षण इन नयनों से अपलक.
देखूं धर चरणों पर मस्तक,
झरती आँखों से अश्रुधार

(३८)

॥ निश्चय आओगे ॥

आओगे निश्चय आओगे।
करुणा-मय आंसू के बन्धन भला तोड़ कैसे जाओगे ॥

मैं न रोकता हूं, तुम जाओ,
जहाँ मुदित होकर सुख पाओ,
यदि हो सके भले मत आओ,
पर क्या कर पाओगे ॥१॥

खिलते कुमुद के विमल सुधाकर,
नलिनी के मधु-लोभी मधुकर,
बखोना चाहो यदि उसपर,
अग्नि न बरसाओगे ॥२॥

क्या जाते हो अमा-चन्द्र से,
नूतन पल्लव हित पतझड़ से,
बढ़ आओगे पर यह मुझ से
कहदो; क्या लाओगे? ॥३॥

पर यदि हो तुम रूठे प्यारे,
तो क्या हैं कुछ दोष विचारे?
सचमुच ही अपराध हमारे;

तुम मन में लाओगे! ॥ ४॥

चाहे जो कुछ मुँह पर आनो,
अथवा मनमें निश्चय ठानो,
लख मुक्ता नयनों में आनो,
जा न सकोगे; फिर आओगे ॥ ५॥

तब फिर से त्रैलोक्य ध्वनितकर,
सुर नर मुनि जन को हर्षित कर,
मधु-मय-मुरली को गुञ्जित कर,
रस बर्षाओगे गाओगे ॥६॥

(८०)

॥ आना ॥

आना ।
भूले भटके कभी इधर भी एक बार हो जाना ॥
तेरी आशा में मैं प्रतियल,
युग साकार रहा ओ चंचल!
तव वियोग दुख ने यह मेरा है कर डाला हाल,
अस्थि चर्म ही शेष रह गये सूख हुआ कंकाल
पर अब हुये कंठ गत प्राण,
जिह्वा से तेरा गुण-गान।
करते मरूं गोद में तेरी इतनी दया दिखाना।
आना ॥१॥

आना।
अन्तिम क्षण में इन श्रवणों में वचन सुधा वर्षाना।
भव्य मूर्ति रखकर नयनों में;
करलूं बन्द सदा को जब मैं।
तब मेरे कर में अवलम्बित ओ मेरे गोपाल।
पहना सका न जिसको हो वह मेरी वन-माल।
डाल गले में अपने लेना,

दया और इतनी कर देना।
अपने पद-पंकज-पराग को मेरे शीश लगाना॥

आना॥२॥

आना।
जल-थल-नभ को गुंजित करके मोहन वेणु बजाना॥
यदि होवे आने में देरी,
भस्म हो चुकी होवे मेरी।
किन्तु देख लेना न उष्ण हो; होवे शीतल,
कर देना तब स्पर्श चरण से अपने कोमल।
पद-रज होकर के वह तेरी,
होगी धन्य भस्म तब मेरी।
इस प्रकार पद छूने की मम अन्तिम प्यास बुझाना॥

आना॥३॥

आना।
दीनबन्धु यह दीन-विनय सुन कहीं भूल मत आना॥
हृदय तड़पता बिना तुम्हारे,
आओगे कब मेरे प्यारे।
आ आ बाँकी झलक दिखादे और लगा मत देरी,
निष्ठुर इति क्या कभी न होगी निष्ठुरता की तेरी।

जाने कैसा विरद तुम्हारा,

अथवा उलटा भाग्य हमारा।

जो भी हो, पर केशव तुमको होगा दया दिखाना ॥

आना ॥४॥

(८१)

॥ अधूरी माला ॥

यह नाथ अधूरी माला ।
आह ! न पूरी कर पाया, कैसे दूं नीरस प्याला ॥
जो थोड़े ये पुष्प लगाये,
वे भी गंधहीन ही पाये ।
दीन भला कैसे मैं पाता उस उपवन की कलियां,
लिये जिन्हें झूमा करती हैं नव लतिका वल्लरियां ।
वहां प्रवेश भला क्यों पाता,
कैसे लाकर इसे बनाता ।
मेरा तो बन उपवन सब है यह तरु कांटे वाला ॥
यह नाथ अधूरी माला ॥१॥

यह नाथ अधूरी माला ।
क्या रचूं इन्हीं पुष्पों से यों सोचा हृदय सँभाला ॥
पर न मानता चंचल चित था,
देख रहा इसकी आशा था ।
यह भी मेरे मन्द भाग्य से मन की पूर्ति न फूला,
इने गिने इन पुष्पों पर ही फिर भी यह मन भूला ।
रहने देता तो भी कुछ था,

क्या करता आशा वश तब था,
अरे मुझे संतोष न आया इन्हें तोड़ ही डाला ॥
यह नाथ अधूरी माला ॥ २॥

यह नाथ अधूरी माला ।
हां पहनाऊंगा मैं तुमको यह सोच रहा मतवाला ॥
हुई न लेकिन माला पूरी,
रही कामना आह अधूरी ।
उन थोड़े से पुष्पों से ही भला कहां को होता,
निर्धन लोभ विवश हो अपनी शान्त बुद्धि सब खोता,
यही एक इच्छा थी मेरी,
पहना चरण-धूलि लूं तेरी ।
इस जीवन के इस पुष्कर पर विधि ने पाला डाला ॥
यह नाथ अधूरी माला ॥ ३॥

यह नाथ अधूरी माला ।
पड़ा इसे रचने में देखो पर हाथों में छाला ॥
गन्ध हीन गुण हीन घृणाकर,
कोमलता से रहित असुन्दर ।
फिर भी इनकी भी तो माला पूरी नहीं बनाया,
तुच्छ दीन दयनीय तुम्हारा शरण तुम्हारी आया ।

व्यर्थ नकर प्यारे पर भ्रम को,
देख न माला, देख हृदय को।
मोह यहां भी क्या देखेगा यह भी भीषण काला॥
यह नाथ अधूरी माला ॥४॥

यह नाथ अधूरी माला।
लेलो दीनों के हठ को अब तक न कभी है टाला॥
एक विवशता देखो, आओ,
त्रिभुवन-पति मुझको [redacted] अपनाओ
यह अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणकमल में लाया,
चाहे है जैसा जो कुछ है पास तुम्हारे आया।
हो स्वीकृत, कर दया दीन पर,
आ, रख दूं इसको कंधो पर।
आ प्यारे, उद्योग सफल कर, आ मेरे नंदलाला! ॥५॥

(८२)

॥ तेरी निष्ठुरता ॥

कन्हैया निष्ठुरता तेरी।
मुझ पर ही होती क्यों गोरे! क्योंकर इतनी देरी ॥
कितने रूप लिये आये तुम
कितनी बार यहीं गाये तुम
कितने तारे पाते उधारे
दी कितनों को पद-रज पावन
पर मन भावन
अब तक उसका कण पाने की हुई न मेरी बारी ॥१॥
प्रति युग में तो आते ही हो
यों भी कभी चरण लाते हो
डँसी काल से त्रस्त काल से
हूं जग में मैं भी जग-पावन!
तरु या पाहन
लता, गुल्म, पशु, विहंग, योनियां लिये भाग्य की फेरी ॥२॥
कोई नियमन माना तुमने
पापी पतित उबारा तुमने
तभी पुकारा नाम तुम्हारा

मैं भूला क्यों? गणिका-तारण!
हो सुधि-धारण
मेरी मलिन बुद्धि को तुमने भला कहो क्यों हेरी! ॥३॥
मैं यदि शुद्ध बुद्ध ही होता
तो क्यों पड़ा पड़ा यों रोता
प्रथम बार ही था निश्चित हो
आते तुम दौड़े मधु-सूदन!
कालिय-मदन!
पर माते को कामादि अरों की महा सैन्य ने घेरी ॥४॥
बहुत बार होती यह भाई
अब इसकी भी हद हो आई
आओ प्यारे नन्द-दुलारे
अथवा ले लो ले लो जीवन
व्याकुल यह मन
अब न सहेगा सह न सकेगा विरह व्यथा यह तेरी ॥५॥

(८३)

॥ योंही रोऊं ॥

क्या योंही रोऊं? जीवनभर।
किन्तु दया न करेगा क्या तू कभी हठीले! प्यारे! निष्ठुर! ॥
कुछ सीमा भी है क्या इसकी
भला उपेक्षा कह कितनी की
मेरे दुख में क्या सुख तुमको
यदि ऐसा है
तो रोने दो सुखी रहो तुम यह जीवन अर्पण है सादर ॥
हो सर्वज्ञ, पता तो होगा
सर्व शक्तिधर कठिन न होगा
क्या हो जाती हानि तुम्हारी
एक बार आ
इस चातक की प्यास बुझाते दया दिखाते मुझ अनाथ पर ॥
कहो और क्या मांग रहा हूं
पद-रज-कण ही चाह रहा हूं
यदि न अभीष्ट इसे भी देना
तो चिन्ता क्या
मत दो वह भी, किन्तु दूर से लख लूं तुमको बस इतना कर ॥३॥

जाने क्यों दयालु कहलाते
जब मुझको इतना तड़पाते
दीनबन्धु आदिक सब मिथ्या
नाम धरे तो
यदि होता कुछ तथ्य नाम में तो क्या यों होता तू क्रूर॥ ॥
चाहे जैसे हो पर प्रिय हो
मैं तेरा हूँ तुम मेरे हो
जैसे चाहे रहो रखो या
कुछ न कहूँगा
रोऊँगा केवल रोऊँगा जब तक तुझे न देखूँ सुन्दर!॥

(८४)

॥ रोने दो ॥

रोने दो मत छेड़ो मुझको ।
इस दुखिया से छेड़ छाड़ में क्या न दया आती कुछ तुमको ॥
मैं न किसी का कुछ लेता हूं,
विघ्न न कभी कहीं देता हूं
यहीं बैठ चुप हो रोता हूं
इस सूने कोने में बैठा गिरा रहा अपने आंसू को ॥१॥
जलती है अन्तर में ज्वाला
प्रगट न किया किसी पर डाला
कष्ट न हो मैं रहा निराला
यहीं इसी वर्षा से किंचित शान्त बनाता रहता उसको ॥२॥
इतना तो मुझको करने दो
अपनी दया रखी रहने दो
यही बहुत मत बस बाधा दो
मन्द भाग्य हूं मैं अनाथ हूं छेड़ न अच्छी मुझसे तुमको ॥३॥
आशा बहुत किया था तुमसे
कभी मुदित अति था मैं इससे
कभी तुम्हें देखूंगा दृग से

व्यर्थ कल्पना थी मेरी वह दोषी भला कहूं मैं किसको ॥४॥
एक सहारा है बस इसका
अपने प्रिय निर्मल आंसू का
हो चिर साथी यह जीवन का
तुम से क्या? यह तो पापी है रोने दो रोने दो इसको ॥५॥

(८५)

" ठुकरादो "

ठुकरादो प्यारे ठुकरादो ।
न तो शरण यदि नहीं चाहते दया-सिन्धु ठुकरादो ।
उदासीन मत होवो प्यारे,
यों तो उलटे भाग्य हमारे ।
दीन हीन आश्रय विहीन यह आया शरण तुम्हारी,
किन्तु महा पातकि है, साधन-रहित क्रूर-व्रतधारी ।
प्रेम भक्ति की बात न पूछो,
यही बहुत अपकार न सूझे ।
अतः सोच मत करो किन्तु प्रभु सत्वर इसे हटादो ।१।।
और न कुछ मांगूगा तुमसे,
होगा नहीं नाथ यह हमसे ।
यह अपवित्र हृदय दूं तुमको ओ प्यारे वनवारी !
चाहे जितना हृदय-हीन हूं बुद्धि न इतनी मारी ।
लोभ न पर यह त्यागा जाता,
पूर्ण इसे कर ओ जगत्राता !
मुझे दूर करने के हित ही वाणी मधुर सुनादो ।।२।।
सुर-सेवित, शंकर-उर-वासी

विधि-वंदित त्रिनवी श्री दासी।
लोकपाल के साथ इन्द्र के मुकुट पुष्प की धूल,
जिन्हें निरन्तर रंजित करती नाशक-भव-भय-शूल।
योगी ध्यान गम्य प्रभु-सार
भक्त-परम सर्वस्व, गुणाकर।
नूतन पाटल-दल से कोमल पावन चरण लगा दो ॥३॥
भूले भटके चाहे जैसे,
अथवा धन्य भाग्य मम ऐसे
चाहे जैसा हूं पर तुम तक तो कैसे भी आया,
रक्खो या त्यागो दोनो विधि मैं ईप्सित फल पाया।
रख लोगे यदि विरद देखकर,
तो क्या और कहूं हृदयेश्वर!
चिन्ता नहीं न करो देव यह; करो दूर ठुकरा दो ॥४॥
पर आने का हो इतना फल
कि शुक-अरुण, मनोहर, कोमल
धूलि-धूसरित चरण उठाओ ठुकराने को मेरे,
इसी बहाने बोलो, सुन लूं मधुर वचन प्रिय तेरे
बढ़े वेग, संभ्रम से मेरा,
ध्यान न रख आवे पद तेरा।

सुर मुनि दुर्लभ चरणकमल-रज कर प्रहार बर्षा दो ॥४॥

रोम रोम में वह छा येगी,

दुष्कृति मिट प्रेम लायेगी।

हो विभोर आनन्द भक्ति से नाच उठूंगा गाऊंगा,

देखूंगा तब ठुकराना भी जब तन्मय हो जाऊंगा।

तुम तब चाहे फिर हट जाना

यदि हो सके, देर है माना

बस इतनी ही, भला सही तुम यही करो ठुकरा दो ॥५॥

(८५)

॥ ठुकरालो ॥

ठुकरालो हमको ठुकरालो ।
अ[illegible] नाथ हैं इनपर सब करुणा [illegible] डालो ॥

दीनबन्धु क्यों कहलाते
जब दीनों को दुख देते हो
यह भाई पन दिखलाते हो ?
हां इस युगके भाई ऐसे, हैं तुम भी ठुकरालो ॥१॥

जग तो स्वार्थ पूर्ण पहले से,
नाता क्या उसका दीनों से,
आशा एक लगी थी तुम से,
पूरी पाया - अब तुम अपनी जी की जलन निकालो ॥२॥

मृत्यु न आती हम मरजाते,
जी भी अरे ! नहीं रह पाते,
ये अधजले कहां तुम पाते,
'सब बेबस हैं', क्या कर लेंगे, जी भर इन्हें सतालो ॥३॥

द्रुपद-सुता ने दौड़ाया है,
कहीं बेर तन्दुल खाया है,
बड़ा कष्ट अब तक पाया है,

भले मिले हम- शेष न रखना- बदला सभी चुकालो ॥४॥

दया न आती क्या? ओ निष्ठुर!
इन असहायों कंगालों पर,
[illegible] हरि भी कहलाकर,
मलिन हमें जान ठुकराया है- ठुकरालो, ठुकरालो ॥५॥

[illegible] हो जीवन, प्राण हमारे,
तव चरणों पर तन मन वारे,
जैसे भी हो मेरे प्यारे,
तेरे ही हैं जो जो न्यारे, ठुकरालो- अपनालो ॥६॥

(-८१)

॥ देखो ॥

देखो ।

एक बार तुम दया-दृष्टि से तनिक इधर भी देखो ।

मत दो कुछ न मांगता हूं मैं,
तुम पर सभी त्यागता हूं मैं,
बस इतना ही कहता हूं मैं,
प्यारे माधव !
मेरी इस दयनीय दशा को पल भर को आ देखो ॥१॥

कहो न क्या पापी अपनाये ?
मलिन, हृदय क्या नहीं लगाये ?
जो भी शरण तुम्हारी आये,
मैं ही फिर क्यों
इतना ठुकराया जाता हूं !– हा! हा! ओ उदार! यों देखो ॥२॥

आता है यदि शुद्ध हृदय में,
तो मेरा क्या बस है इसमें ?
दुर्गुण भरे पड़े हैं मन में,
इन्हें मिटादो,
मैं निर्बल हूं वश में इनके,– तनिक इधर भी देखो ॥३॥

यह सब तो बस केवल मिस है,
छल न करो, यह दीन आर्त है,
जैसा भी है फिर भी तेरा है,
जैसे रखते
रहता हूं वैसे ही तो मैं- क्यों न इधर फिर देखो ॥४॥
जैसा चाहो वैसा करदो।
जो अभीष्ट प्रियतम! तुमको हो,
पर न और अब कुछ देरी हो,
मैं व्याकुल हूं
दया करो अब- क्या न करोगे?- नहीं, नहीं, देखो, देखो ॥५॥

(८८)

॥ संसार ॥

प्रभो! यह स्वार्थ पूर्ण संसार !
भला यहां क्यों कोई सुनता व्याकुल आर्त पुकार ॥
जबतक स्वार्थ सिद्ध होता है,
तब तक का ही सब नाता है,
भला दीन [illegible] को भाता है,
शक्तिमान के मित्र सभी हैं, सबका यह व्यापार ॥१॥
भूला बहुत इन्हें अपनाकर,
अब इतने पर सूझा जाकर,
जब अशरण हूं सब कुछ खोकर,
आह खो दिया मैने जीवन – इन पर बिना विचार ॥२॥
अब क्या करूं? – पुकार रहा हूं,
दीनबन्धु! मैं अति व्याकुल हूं,
राह तुम्हारी देख रहा हूं,
क्या तुम मुझको अपनाओगे? – करुणा-सिन्धु! उदार! ॥३॥
अथवा तुम भी धनियों के हो,
पोषक शक्तिशालियों के हो –
तो मत यों अन्तर व्याकुल हो.

भला उपाय और क्या ?- हमको सब कुछ सहना होगा हार ॥४॥
हां जग में तो न्याय यही है,
जगन्नाथ भी ऐसा ही हो,
तो आश्चर्य भला क्यों हो
यदि यह नहीं; दूर क्यों हम से,- सुनता नहीं पुकार ॥५॥
आने दो हमको या आओ,
अब मत यों प्यारे! दुलराओ,
गाओ गाओ मुरलि बजाओ,
हम अछूत, पापी तो तेरे, दे दो अपना प्यार ॥६॥

(८७)

॥ माधव! ॥

माधव! और पुकारूं किसको ?
तेरे बिना बता तो भाई! आश्रय और भला क्या मुझको ॥
दिया हृदय तन मन था जिसको,
ठुकराया हा उसने उसको,
अपनाया जाकर औरों को,
मैं गरीब हूं,
'धनी जनों के सब साथी हैं', निर्दय होकर त्यागा मुझको ॥१॥
'आह! यही जग का नाता है,
केवल स्वार्थ दृष्टि आता है,
हृदय न कोई लख पाता है,
हाय! करूं क्या ?
अन्धा हूं मैं- मार्ग बताओ, दया भीख दो इस भिक्षुक को ॥२॥
अब तक बातों में भूला था,
हृदय नहीं मैंने जाना था,
धोखा ही सारा धोखा था,
मुग्ध हुआ मैं
कितनी मीठी थी वह वाणी- अमृत बता विष दिया दीन को ॥३॥

अच्छा- अब तो शरण तुम्हारी,
क्या होगी सुधि तुम्हें हमारी?
क्या अपनाओगे? गिरिधारी!
अथवा तुम भी
ठुकराओगे?, ओ करुणामय!-इस अशरण, अनाथ, निर्धन को ॥४॥
मृत्यु-दान दो-यदि ठुकराओ,
अथवा अब ओ प्रियतम! आओ,
मुझको आज सनाथ बनाओ,
देर करो मत,
दया करो आओ; अपनाओ-क्या न दया आती है तुमको? ॥५॥

(८०)

॥ नाचो ॥

नाचो ।

एकबार फिर से ओ नटवर आओ आओ नाचो ॥

मां के मधुमुख नहे होकर

मुख में मुख पर हृदय लहर

~~[illegible]~~ कुसुमित दल पर डोले

आकुल प्रेम-पूर्ण भक्तों के निर्मल मन में नाचो ॥१॥

अपमानित अशरण जन

दीन हीन हैं अति निर्बल हैं

ठुकराये सब से जाते हैं

हो करुणानिधि! इन दुखियों के शुचि आंगन में नाचो ॥२॥

जो मद-मत्त बने ये जन हैं

अति ही कलुषित जिनके मन हैं

ले दीनों का धन मोटे हैं

चक्रपाणि मधुसूदन आओ इन दुष्टों में नाचो ॥३॥

क्या भूले गोपाल! इन्हें तुम?

देख रहे दीना गौवें हम,

पाप अभी क्या है प्यारे! कम?

देर करो मत - इन्हें बचाओ - आकर इनमें नाचो ॥४॥

सब हैं दुखी सभी रोते हैं,
सेवक तेरे अति व्याकुल हैं,
सूनी सी यह पुण्य मही है
त्रिभुवन-भूषण! भूषित करदो, एक बार फिर ना जो ॥४॥
ललित त्रिभंगी मुरली करमें,
पीताम्बर कोंध कटि तट में,
तरु कदंम्ब शुभ छाया में
हो तुम खड़े— इसी झांकी से मम मानस में नाचो

(८१)

॥ अनुरोध ॥

जी चाहे सो नाच नचाओ ।
किन्तु न यों प्रिय! भ्रम में लाकर व्याकुल मुझे बनाओ ॥
यह अपनापन जाने कब से
भटकाता है इस जंगल में
कभी पार भी क्या मैं इससे
जा पाऊंगा ?
छल न करो, यों मत बहला दो और न अब ठुकराओ ॥१॥
रहने दो जैसा हूं वैसा
या जी में हो कर दो वैसा
पर हां अहंकार यह कैसा ?
क्यों करता हूं
दया करो, हां दया करो अब इससे मुझे छुड़ाओ ॥२॥
पापी या पुण्यात्मापन की
क्यों होती यह चिन्ता सबकी
जाने कब से इस इच्छा की
मृग मरीचिका
में पड़ भटक रहा हूं भाई! आओ राह बताओ ॥३॥

बस तुम पर ही निर्भर होकर
सारी चिन्ता आशा तजकर
पूर्ण भरोसा तव करुणा पर
कब होगा प्रिय!
विश्वासी अपनी करुणा का केवल मुझे बनाओ ॥४॥

आह भूल ही यह भी तो है
यह भी तो ममता का [illegible]
जाने क्या तेरी इच्छा है
कुछ न कहूंगा
[illegible] दो यह भी, चाहे जो दो, और न हमें रुलाओ ॥५॥

(८२)

॥ इतनी कृपा ॥

इतनी कृपा भला क्या मुझ पर ।
होगी ? ओ प्यारे मनमोहन! गिरिधरनागर! नटवर! नटवर!
सुना बहुत पातकितम तारे
होंगे भी क्या भाग्य हमारे ?
क्या हम भी पावेंगे प्यारे ?
शिव-विधि-दुर्लभ
तेरी पावन चरण-कमल-रज, भव-भय-नाशिनि सुखमय सुन्दर ॥१॥
पुण्य न किया कभी पर मैंने
लीन रहा नित पाप-कर्म में
काम-क्रोध-मद मम अन्तर में
भला कहां से
मूर्ति तुम्हारी प्रगटित होगी, आओगे जीवन-धन क्योंकर ॥२॥
नहीं, भला यह भाग्य कहां है
जो आवें तव चरण यहां हैं
नहीं सही, बस क्या इसमें है ?
प्रभो! दूर से
विश्व-विमोहन झांकी पर क्या लख पाऊंगा ? ओ करुणाकर! ॥३॥
यह भी नहीं ? यही तो कर दो

प्रेम तुम्हारे गुणगण से हो
नाम तुम्हारा मम जीवन हो
क्या इतना भी
आह न मैं पाऊँगा ? माधव! नहीं दयामय! दयाद्रविचार ॥४॥
निशि दिन चातक सा लव[illegible]
यह अनाथ तेरे गुण गाये
चाहे तुम्हे न पाये, पाये
व्याकुल हो बस
जो दीन मछली सा, अपनी प्यारी मणि बिन जैसे फणधार ॥५॥

(८३)

॥ इतना तो करदो ॥

इतना तो मुझको करने दो
इस एकान्त शान्त कोने में जी भरकर रोने दो ॥
जितना चाहे मुझपर हंसलो
जो चाहो वह मुझे समझलो
दूर रहो अपमानित करदो
छेड़ो मत जैसा हूं वैसा दया करो रहने दो
इच्छा नहीं मुझे अब सुख की
अथवा तुम आदर दो इसको.
हानि तुम्हारी क्या हमने की?
यदि जीवन खोता हूं तो भी अपना ही खोने दो।
मुझे न तुम सुख दे पाओगे
उलटे बड़ा कष्ट आओगे
कहो भला फिर क्या पाओगे?
उलटी ही है बुद्धि हमारी हमें दूर रहने दो ॥२॥
यही बड़ा सुख भाई! मुझको,
तब शब्दों में "इस पागल को,,
रहने दो क्या मतलब तुमको?

इस रोने में मेरा जीवन, रोने दो रोने दो ॥४॥

तुम क्या मेरी पीड़ा जानो
क्या सुख … रोने का जानो
चरण पर … हूँ अब मानो
आओ मुझे प्राण-धन के पद आंसू से धोने दो ॥६॥

यों ही रोऊंगा जीवन भर
आयेगा वह कभी दयाकर
उठ तब धो दूंगा पद सत्वर
रहने दो, रोने दो, मुझको वह शुभ दिन पाने दो ॥५॥

(८४)

॥ याचना ॥

प्रभो! दीन इतना हो जाये।
कभी एक क्षण तो चरणों में रहकर जीवन-सफल बनाये ॥
हम तुम ही केवल दोनों हों
और न कोई कहीं यहां हो
मेरा सिर तव चरणों पर हो
नीरव अश्रु-धार नयनों से बह उनको धोती जाये ॥१॥
अपलक देखूं आनन शशि को,
रख कर सिर पर कर पल्लव को
तू देखे बस मेरे मुख को
अमृत-वृष्टि करता सा किंचित मुसकाता हंसता जाये ॥२॥
शांत वायु हों शान्त दिशायें
लख शशि भी लज्जित हो जाये
तारे होवें दृष्टि लगाये
मधुर मधुर कुछ कल कल करती कालिन्दी बहती जाये ॥
तब लेकर मुरली को कर में
भर दे वह स्वर उन छिद्रों में
छावे जो सारे त्रिभुवन में

रहे न कुछ, उस स्वर लहरी में लीन विश्व सारा हो जाये ॥८

हो झंकृत उससे यह झन्कार

तब अपना सर्वस्व चरण पर

रख दूं, रख दूं प्यारे नटवर

सुधि बुधि खोकर प्रेममग्न हो यह तन भी उस पर गिर जाये ॥८

डाल मुरलिका तू तब कर से

उठा लगा ले मुझे हृदय से

पोंछ आंसू पीताम्बर से

मैं तो तेरा हूं ही प्यारे! तू मेरा मेरा हो जाये ॥

(८५)

॥ भिक्षा ॥

दो दयालु दानी! यह भिक्षा ।
बहुत हो चुकी देर दयामय कब तक करूं प्रतीक्षा ॥
वृन्दावन की पुण्य भूमि में,
कालिन्दी के ललित पुलिन में;
तरु कदम्ब की शुचि छाया में,
बैठ तुम्हारे पद-पंकज में,
ग्रहण करूं तेरे भक्तों से परम प्रेम की शिक्षा ॥१॥
गोपी चरण-रेणु नित पाऊं
पाप ताप सब दूर भगाऊं,
बना मत्त तेरे गुण गाऊं
अन्य स्थान पर कहीं न जाऊं,
रहूं वहीं प्यारे मैं नित ही यही एक बस इच्छा ॥२॥
है विश्वास न जग भोगों का
गया भरोसा प्रिय लोगों का
नहीं सहारा बल का तन का
एक भरोसा तव करुणा का,
क्या न अभागा मैं पाऊंगा प्रेम-मन्त्र की दीक्षा ॥३॥

सींच रहा है द्वार अश्रु से,
तेरे यह भिक्षुक प्रिय! कब से
विफल लौटकर भला यहां से
क्या मैं जाऊं? कर्म दोष से
'कर्तुं कर्तुं अन्यथा कर्तुं', का भूली श्रुति-शिक्षा
विरद बचाओ आओ आओ
दीनबन्धु! मुझको अपनाओ
पुनः मुरली के स्वर में गाओ
फिर त्रिभुवन को मुग्ध बनाओ
गाओ प्रिय कदंब के नीचे दो दे दो यह भिक्षा

(पद)

॥ ले लो ॥

ले लो जीवन-धन यह ले लो।
अति छोटी सी तुच्छ भेंट लाया हूं प्यारे ले लो ॥
त्रिभुवनपति तुम सुर-पूजित हो,
क्या दूंगा तुम पूर्ण काम हो
दूं तो तब जब पास यहां हो
यह भिक्षुक देगा ही क्या पर यह इतना तो ले लो ॥१॥
सब तेरा ही तो है प्यारे
जीवन तन मन प्राण हमारे
पर करुणाकर यहां पधारे
तो यह भी आशा पूरी हो ले लो इसको ले लो ॥२॥
कैसे पूजा करूं तुम्हारी
जिन चरणों पर श्री बलिहारी
उनपर क्या है शक्ति हमारी
अरे चढ़ाऊं कुछ भी प्यारे लज्जित हूं यह ले लो ॥३॥
हां निर्गन्ध कहीं से लाया
भेद से कुछ कुसुम जुटाया
सो भी बड़े भाग्य से पाया

भाग्यहीन हूं इन्हें न देखो हृदय देखकर लेलो ॥४॥

आह! आज तेरे चरणों पर

इन वन के पुष्पों को लेकर

भक्त कमल दल देते [illegible]

मैं लाया हूं फिर भी कहता दया करो यह ले लो ॥५॥

पर न मानता है चंचल चित

तुम तो हो प्यारे करुणानिधि

इसी से इन्हें समर्पित

आया करने ओ जीवन धन कहता है यह ले लो ॥६॥

मेरा सब सर्वस्व यही है

चाहे जैसा जो कुछ भी है

यही लालसा विनय यही है

अश्रु-सिक्त सुमनों की अंजलि यह लेलो प्रिय लेलो ॥७॥

- २०६५

(६१)

॥ दे दो ॥

दे दो बस इतना ही दे दो ।
केवल तुम्हें पुकारूं प्यारे इतना मुझको दे दो ॥
मूल मोह मनका, धन, तनका,
सारे जगका, प्रिय परिजनका,
बन मधुकर तव चरणकमल का
नित आकुल पाने को उसके रहूं यही बस करदो ॥१॥
चाहे जैसे रहूं जहां भी,
दुख में, सुख में, मैं कैसे भी,
भूल आत्म-सुधि तव गुणगान
गाऊं मत्त बना पागल सा इतना मुझको दे दो ॥ २॥
मैं न मांगता हूं जग-सुख को
विद्या यशको, स्वर्ग मुक्ति को
स्नेह न अपना दो तुम मुझको
और न कुछ मैं मांग रहा हूं नाम-प्रेम ही दे दो ॥३॥
जो तुमको पाये हैं प्यारे,
हैं वे सारे पूज्य हमारे
भाग्य कहां हों वैसे मेरे

दीन, हीन हूं यही समझ कर प्यारे इतना कर दो ॥४॥
तुम्हें पुकारूं अश्रु बहाऊं
तेरे पावन गुणगण गाऊं
जीवन तेरा नाम बनाऊं
क्या तुम इतना दोगे प्रियतम! दो इतना तो दे दो ॥५॥
चाहे तुम न मुझे अपनाओ
दूर करो चाहे ठुकराओ
पर इतनी तो दया दिखाओ
केवल नित्य पुकारूं तुमको इतना तो बल दे दो ॥६॥

(५८)

॥ याचना ॥

अरे मैं आया तेरे द्वार,
देख तो ओ प्यारे घनश्याम ॥
लिये आशा कितनी चितचोर,
चला हूं आज तुम्हारी ओर ॥
दिखादो मोहन मूर्ति कृपालु,
सुना दो मुरली मधुर दयालु ।
देख लूं इन नयनों से आज,
छटा वह तेरी शोभाधाम ॥ १ ॥
तनिक तो इधर दृष्टिकर आह,
उठ रही यह अन्तर में दाह ।
प्रज्वलित शोक मोह का अनल,
कामतृष्णा भी प्यारे ! प्रबल ॥
बुझादे अब तो इनको तात !
वृष्टि कर करुण ओ घनश्याम ! ॥२॥
भरा है यहां महा अन्धेरा,
कृपा रवि आवे के द्वार तेरा ।
भूल मैं रहा इन्हीं के द्वारा,

हरी ! अब तू जीता मैं हारा ।
निकल, हूं देख पड़ा मैं यहां,
स्मरण करता हूं तेरा नाम ।
भूल मत, मुझे न कोई और,
सहारा दीनबन्धु! तव ठौर ।
हरना मत, आश्रयहीन अनाथ,
उगते नाथ ! हाथ धर हा-
पुकारूं तुझे छोड़ अब किस,
कौन है तुमसा करुणा-धाम ? ॥८
देख मत मेरी ओर, सँभाल,
बिरद अपना प्यारे गोपाल ।
भला क्या मेरी शक्ति, अपार !
तुष्ट जो करूं, कृपण उपहार
भला क्या दूंगा अशरण-शरण,
शरण दो शरणद प्यारे श्याम ॥

(-८८-)

॥ प्रतीक्षा ॥

कभी अन्त भी होगा इसका ?
हृदय! प्रतीक्षा करता है तू जाने कब से किसका ॥
हिमगिरि की हिम मय चोटी पर
सुन्दर धवल सुखद आभा पर
रवि की प्रथम किरण ने आकर
कितना सुन्दर किया इसे लख, रोता क्यों है भला बताते
आया तुझे शोक क्यों किसका ?॥
चल अनन्त सागर के तट पर
तनिक देख वह ललित हिलोर
[illegible] बेला पर हंसों का शोर
देख वायु विरचित जल स्तम्भों से सा ही तू स्मृति स्तम्भ भी
रचता है अन्तर में किस
आता तो है सभी कहीं तू
किन्तु न सुख पाता इनसे तू
सुन्दर दृश्यों में मग में तू
ढूंढ रहा था मैंने देखा क्या वह प्रियतम पद रेखा
मार्ग नित्य लखता रहता जिसका ॥२॥

कहीं न सुख अनुभव करता है
यहां वहां दौड़ा करता है
किसका पता खोजता तू है
रात रात दिन दिन पल युग साकार प्रतिक्षा तू करता है
कब से आते प्यारे उसका ॥४॥

जीवन भर था पता लगता
देख यही अब तो है आता
अरे न उठ क्यों हृदय लगाता
सफल प्रतीक्षा हुई अरे अब यही तो था व्रत बस तेरे मो [illegible] का
आज अन्त पाया तू इसका

(१००)

॥ लालसा ॥

यही एक लालसा हृदय में ।
लोटूं एक बार विकल हो प्यारे तेरे चरण-कमल में ॥
कालिन्दी का ललित पुलिन हो,
वह तेरा प्रिय वृन्दावन हो ।
कूद रहे हों कपि शाखों पर देते हों सुन्दर किलकारी,
नाच रहे हों मत्त केकि गण लख जलधर-द्युति मंजु तुम्हारी
मृग शिशु निडर केलि करते हों,
वन-विहंग-रव मन-हरते हों ।
गायें सुख से चरती होवें मृदु श्यामल तृण वही निकट में ॥
यही लालसा एक हृदय में ॥१॥

यही लालसा एक हृदय में ।
कुछ हँसते त्रिभंगी से हो तुम लिये मुरलिका कर में ॥
बछड़े कभी दौड़ भी आवें,
तुम्हें सूंघ फिर कूदें धावें ।
झरते हों तरु लता-बेलि से तुम पर सुन्दर कुसुम मनोहर,
चढ़ा रही हो कमल ससीकर यमुना तेरे पद-पंकज पर ;
मुग्ध भ्रमर बनमाल गन्ध से,

गाते हों तेरे गण-गण से ।
खड़े वहीं देखूं मैं तुमको तरुकदम्ब के ललित मूल में ॥
यही लालसा एक हृदय में ॥२॥
यही लालसा एक हृदय में ।
तुम ही तुम बस तब रह जाओ मेरे सूने अन्तस्तल में ॥
हो गद्‌गद्‌ पुलकित तन सारा,
देख सुहावन वेश तुम्हारा ।
अश्रु गिराते भूल देह सुधि गिरूं चरण पर तेरे,
मुरली अलग डाल झुक जावें पकड़ें कर को मेरे ।
तेरे युग कर मुझे उठा लें,
और सदा को ही अपना लें,
तब फिर गूंजे वंशी की ध्वनि मन मोहन त्रिभुवन में ॥
यही लालसा एक हृदय में ॥३॥
यही लालसा एक हृदय में ।
बीते जीवन सुभग सुहावन उन करील-कुंजों के गृह में
नित यमुना जल मिले पान को,
कालिन्दी ही रहे स्नान को ।
व्रज के चिथड़े वस्त्र बनाऊं, वहीं कहीं टुकड़े भोजन को,
दर्शन पाऊं नित तब जन के आते जो तेरे दर्शन को ।

हनुमद्धाम

श्री राम आध्यात्मिक प्रन्यास

परिचय और विकास

श्री शुकतीर्थ–

जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु और वैष्णवों में भगवान शंकर सबसे उत्तम हैं, वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण सर्वश्रेष्ठ है। यह पुराण दोषरहित अत्यन्त निर्मल ग्रन्थ है। इसमें जीवनमुक्त परमहंसों के सर्वोत्तम, अद्वितीय एवं विशुद्ध ज्ञान का वर्णन किया गया है।

शुकतीर्थ वही पावन स्थान है जहाँ शुकदेवजी के मुख से निःसृत श्रीमद्भागवत कथा मानव के तीनों भव–तापों के शमन के लिए घोषणा कर रही है–

श्री शुक मुनि भागवत कहि लीनों जगत उबार।

नहि अब लौं भवसिंधु में, डुबि जान संसार।।

मुजफ्फरनगर जनपद से २६ कि.मी. दूर माँ भागीरथी गंगा के तट पर स्थित शुकतीर्थ उत्तर भारत का अत्यंत पौराणिक, धार्मिक तथा सुरम्य तीर्थ स्थल है। इसका अन्य पुराणों एवं श्री मद्भागवत महापुराण में आनन्दवन नाम से भी वर्णन मिलता है इस को ही शुकतार अथवा शुकताल या शुक्रताल कहते हैं। मुजफ्फरनगर से यहाँ तक बस, टैम्पो इत्यादि द्वारा पहुँचा जा सकता है। श्री शुकदेव जी ने यही महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाई थी। श्रीमद्भागवत की उद्गम–स्थली रही है। यहाँ के तपोमय सात्विक वातावरण से मुग्ध, होकर ही श्री चक्र जी महाराज ने इसे श्रद्धालुओं को श्रद्धा केन्द्र जानकर इसी शुकतीर्थ को हनुमद्धाम के निमार्ण के लिए चुना।